मृत्युंजय रवीन्द्र

हजारीप्रसाद द्विवेदी
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय
चण्डीगढ़

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड
हीराबाग बम्बई-४

१	प्रथम संस्करण
१	
मूल्य	छः रुपये
प्रकाशक	यशोधर मोदी
	मैनेजिंग डाइरेक्टर
	हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर प्रा० लि० बम्बई—४
	शाखा दिल्ली
	वा० पा० ठाकर
	व्यवस्थापक
मुद्रक	लीडर प्रेस इलाहाबाद
आवरण	स

लेखक का वक्तव्य

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर हमारे देश के मूर्धन्य कवियों में हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। सारे संसार में उनका सम्मान है। भारतवर्ष जिन दिनों राजनीतिक पराधीनता का शिकार था उन दिनों रवीन्द्रनाथ की रचनाओं ने संसार के मूर्धन्य विचारकों को इतना अधिक प्रभावित किया था कि उनके शक्तिशाली शासकों का यह प्रचार अपने आप खंडित हो गया कि भारतीय जनता पिछड़ी हुई असभ्य अवस्था में है और इसलिए उसे किसी सभ्य जाति का शासन अत्यन्त आवश्यक है। रवीन्द्रनाथ के सम्मान ने देशवासियों में नवीन अपराजेय आत्मबल का संचार किया था। महात्मा गांधी के सिवा और कोई दूसरा नेता नहीं है जिसने देश में ऐसी आत्मगरिमा का संचार किया हो। परन्तु रवीन्द्रनाथ का साहित्यिक कृतित्व तो महत्त्वपूर्ण था ही, उनका व्यक्तिगत जीवन भी उसी प्रकार महान और प्रखर था। इन पंक्तियों के लेखक को लगभग बाईस वर्ष तक उनके निकट संपर्क में रहने का अवसर मिला था। उनका जीवन बहुत ही मर्यादित और प्रेरणादायक था। उनके निकट जानेवाले को सदा यह अनुभव होता था कि वह पहले से अधिक परिष्कृत और अधिक बड़ा हो कर लौट रहा है। बड़ा आदमी वह होता है जिसके संपर्क में आने वालों का अपना बड़प्पन जाग उठता है। रवीन्द्रनाथ ऐसे ही महान पुरुष थे। उनके पास क्षण भर भी बैठना परम सौभाग्य का विषय था। सदा उनसे नयी प्रेरणा और नया सन्देश मिलता था। वे विधाता के भेजे हुए परिपूर्ण मनुष्य थे। वे सच्चे अर्थों में गुरु थे।

इस पुस्तक में समय-समय पर कवि की रचनाओं और व्यक्तित्व के संबंध में लिखे गये मेरे लेखों का संग्रह है। आयुष्मान् विद्याधर शास्त्री ने इन्हें प्रकाशित करने का आग्रह किया। इस विषय में मेरे प्रिय विद्यार्थी

और अब हिन्दी की नयी पीढ़ी के श्रेष्ठ विचारक आयुष्मान डा० नामवर सिंह का सहयोग उन्हें मिला। मेरे चिरंजीव श्री मुकुन्द द्विवेदी भी इस यज्ञ में शामिल हुए। इन लोगों ने न जाने कहाँ कहाँ से इन लेखों को खोज निकाला। यह तो मैं नहीं कहता कि रवीन्द्रनाथ के बारे में मैंने जो कुछ लिखा है वह सब इस पुस्तक में आ गया है, पर अधिकांश आ गया है। अगर इन तीनों ने खोज ढूँढ़ कर इन लेखों को न ढूँढ़ निकाला होता तो ये पुस्तकरूप में कभी आ ही नहीं सकते थे। कुछ लेख आकाशवाणी से प्रसारित हुए थे जिन्हें प्रकाशित करने की अनुमति देकर आकाशवाणी के अधिकारियों ने हमें बहुत आभारी बनाया है। कुछ तो वर्षों पहले विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। और कुछ ऐसे भी हैं जो विभिन्न साहित्यिक आयोजनों में भाषण के रूप में पढ़े गए थे। उनके प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मुझे आशा है कि सहृदय पाठक इन लेखों में रवीन्द्रनाथ के उन्मुक्त व्यक्तित्व का कुछ आभास पा सकेंगे।

चण्डीगढ़ }
१५ ८ ६ } हजारीप्रसाद द्विवेदी

अनुक्रम

प्रथम खंड व्यक्तित्व

द्वितीय खंड कृतित्व

तृतीय खण्ड काव्य

व्यक्तित्व

१

गुरुदेव के सस्मरण

आज मई गुरुदव का जमदिन है। मुझे बार बार गुरुदेव के जमोत्सव की ही याद आ रही है। इस थोड समय की बातचीत मे इन उत्सवो के सम्बध म ही कुछ कहन की प्रबल इच्छा होती है। जब तक गुरुदेव इस ससार म रहे इस दिन को उनके शिष्य उनको अपने बीच बिठाकर जमोत्सव मनाया करते थे। उनके जीवन के अतिम ग्यारह उत्सवो म सम्मिलित होन का सौभाग्य मुझ भी प्राप्त होता रहा है। शातिनिकेतन क आश्रमवासियो के लिए यह उत्सव विशष उत्साह और उल्लास का कारण रहा करता था। जब मैं शातिनिकेतन गया था तब ८ मई को उत्सव मनाने के बाद ग्रीष्मावकाश हुआ करता था पर इसम कई कठिनाइयाँ आन लगी। शातिनिकेतन म पानी का कष्ट बराबर बना रहता था। ग्रीष्मावकाश बहुत कुछ कुआ के पानी पर निभर करता था। यदि कुआ का पानी समाप्त हो गया तो छुट्टी अपने आप हो जाया करती थी। लेकिन शातिनिकेतन का प्रत्यक बच्चा गुरुदेव का जमोत्सव अवश्य मनाना चाहता था। इसलिए यह आवश्यक हो गया कि कोई एसा उपाय निकाला जाय जिसम अप्रल महीन म ही गुरुदेव का जमोत्सव मना लिया जाय। बगला पचाग सौर वष क हिसाब स बनता है। सक्राति क दूसरे दिन से वहा महीना आरम्भ होता है। इस प्रकार बगाल का प्रथम मास बशाख होता है जो मष सक्राति क दूसरे दिन से शुरू होता है। आजकल प्राय १४ अप्रल को बशाख की पहली तारीख पडती है। गुरुदेव की जमतिथि बशाख मास की २५ वी तारीख थी। सो आश्रम म गुरुदेव का जमोत्सव बशाख की पहली तारीख को मनाने का निश्चय किया गया। वही तिथि बगाल के नव वष की प्रथम तिथि भी होती

है। यो भी उस न्नि हम ोग गुरुन्व को प्रणाम करन ाया करा थ और व भी उम न्नि कुछ-न-कुछ उपन्न अवश्य दते थ । अर दाना उत्सव एक ही न्नि मनाय जान न्गा । आश्रम म यही परम्परा आजतर चग्री आ रही है। वस्तुत यह जन्मदिन का उत्सव न हो कर सम्मान का उत्सव है। १४ अप्रल को गरुन्व का उत्सव मनाना अर शान्तिनिरतन म रूढ हो गया है। परन्तु यह नहा समझना चान्गि कि आश्रमवासिया न ८ मई या २५ वगाख का एकन्म भन्ग न्यिा है। ग्रीष्मावकाग के बान्भी जो ोग आश्रम म रह ाया करते हैं व उस न्नि भा उत्सव मना ेत हैं। मैं प्राय सभी एस उत्सवा म उपस्थित रहता आया हू । कभी-कभा तो इस दूसर उत्सव का पौरोहित्य भी मुझ ही करना पन्ता था। आज साचता हू तो आखा म वरवस आसू आ जात हैं। कितना वडा सौभाग्य था। रवीन्द्रनाथ के जन्मोत्सव का पौरोहित्य! उस न्नि गरुन्व गुभ्र कौनय वस्त्र की धोना पहनत थ । कौगय वस्त्र का ग्म्बा कर्ता और उसी की सन्नर चान्र । उस देव मनोहर गरीर पर यह वस्त्र इतन सुन्दर लगते थ कि क्या वताऊ! उन वडी-बडी प्रमपूर्ण आखा का जव याद आती है तो हूक-सी उठती है। आज हम उनका चित्र रख कर उनका जन्मोत्सव मनाते हैं उनके विषय म व्याख्यान सना करत हैं। कितना वडा भाग्य विपयय है —

आखिन मे जो सदा रहते तिनकी यह कान कहानी सुन्यो करें।

मुझ यह छवि विलकु प्रत्यक्ष-सी न्खिायी देती है। गरुन्व उत्सव-स्थ पर पधारते थ । गख वनि से वायमण्डल मखरित हो उठता था। मैं वदमन्त्रा म गरुन्व का स्वागत करता था आचाय नन्दला बोस और उनके गिष्या द्वारा रचित मनोहर अग्निमत्र स सजा हुआ सभास्थ गान यगान से गूज उन्ना था और गरुन्व स्मित हास्य क साथ आसन ग्रहण करत। उनकी उपस्थिति म अपूर्व परिपूर्णता थी। जहा व उपस्थित होत वहा सव कुछ भरा भरा गता। जव गतकाण्टीीयवना मन्त्र के पा क बा उनके दूर्वान्ल बाधता तो व बन् स्नेह से हाथ उग्ग दत—

मेरा यह परम सौभाग्य आज विलुप्त हो गया है। जैसे एक मधुर स्वप्न हो। उत्सवों में अब भी उपस्थित होता हूँ पर अब वे हाथ नहीं मिलते जिनमें दूर्वादल बांधकर उनके शतायु होने की प्रार्थना कर सकूँ।

आश्रम में जितने उत्सव होते थे उनमें गान और वेदमन्त्रों का प्राधान्य रहता था। गान गुरुदेव के रचे हुए होते थे सुर भी उन्हीं के दिये रहते थे, सिर्फ गाने वाले आश्रम के वे लोग होते थे जिनमें गाने की क्षमता होती थी। आचार्य क्षितिमोहन सेन वेदमन्त्रों का चुनाव करते थे। मैं सन १९२० के नवम्बर में शान्तिनिकेतन प्रथम बार गया था। १९३१ के वैशाख में (८ मई को) मैं गुरुदेव के जन्मोत्सव में प्रथम बार सम्मिलित हुआ। इस बार उनका ७०वाँ जन्मदिन था इसीलिए धूम भी बहुत थी। आचार्य सेन ने उसी बार मुझसे और अन्य कई अध्यापकों और विद्यार्थियों से वेदमन्त्रों का पाठ कराया था। और लोग तो नाना स्थानों में चले गये पर मैं तभी से आचार्यजी के सहकारी के तौर पर उत्सवों में वेदमन्त्रों का पाठ करने लगा। उनकी अनुपस्थिति में मुझे प्रधान पुरोहित का भी काम करना पड़ता। गुरुदेव उत्सव के अनुरूप वेदमन्त्रों के चुनाव में बहुत रस लेते थे। वे प्रत्येक मन्त्र और गान को स्वयं देख लेते थे। आवश्यकता पड़ने पर मन्त्रों के अनुवाद की भाषा का सुधार भी करते थे। प्रत्येक छोटे-से-छोटे काम को वे बहुत गम्भीरतापूर्वक देखते थे। परन्तु उस सम्पूर्ण गम्भीरता में एक प्रकार सहज भाव बना रहता था। यह सहज गम्भीर भाव उनकी अपनी विशेषता थी। इसी ने शान्तिनिकेतन के प्रत्येक कार्य को इतना सुरुचिपूर्ण बना दिया है।

एक बार गुरुदेव ने एक विशेष उत्सव के लिए मन्त्र चुनने का भार भी मुझे दिया था। उन दिनों आचार्य सेन आश्रम में उपस्थित नहीं थे। उत्सव की बात गुरुदेव के मन में आयी और तुरन्त उनका आदमी मेरे पास पहुँचा। उत्सव के अवसर पर वे बालकों की तरह प्रसन्न हो उठते थे मेरे पास जब उनका आदमी पहुँचा तो मुश्किल से उस समय सूर्योदय

हुआ होगा । मैं कुछ नहीं समझ पाया कि गुरुदेव ने क्या कुछ भेजा है । दौड़ा-दौड़ा गया । गुरुदेव बड़े प्रसन्न थे । उन्होंने बताया कि अमुक दिन को मेरे घर में अमुक उत्सव की बात आयी है । इस बार मंत्र तुम्हें ही चुनने पड़ेंगे, तुम्हें ही पढ़ने पड़ेंगे । फिर जरा विनोद के स्वर में बोले—तुम मेरे प्रतिद्वन्द्वी बनना चाहते हो। यह नहीं हो सकेगा । एक क्षण के लिए मैं समझ नहीं सका कि उनका आशय क्या है परन्तु उनका चेहरा तब तक स्मितदीप्त हो चुका था । उन दिनों मैंने भी दाढ़ी बढ़ा ली थी । शायद वह अच्छी नहीं लगती थी । कम-से-कम कवि की शोभा में स्थान पाने योग्य तो वह नहीं हो थी । गुरुदेव का इशारा उसी ओर था । बोले—वेद पढ़वाता हूँ तो चेहरा भी वेद पढ़नेवाले का चाहता हूँ । और फिर हँसते हुए बोले—आजकल यह बड़ा खतरनाक है । बच के रहा करो ।

मैंने वेदमन्त्र चुने । उनका बंगला अनुवाद भी लिखा और गुरुदेव के पास ले गया । थोड़े में रीझना गुरुदेव को ही आता था । एकदम भोलानाथ ! मेरे मन्त्रों की उन्होंने खूब प्रशंसा की । अनुवाद की भाषा की भी प्रशंसा की । यद्यपि प्रेस में जाते-जाते वह भाषा एकदम बदल गयी थी । छपी प्रति मुझे देते हुए बोले—बंगला अनुवाद थोड़ा बदल दिया है । देख लो । उनका मूल शब्द था एकटू । उस एकटू के पीछे कितना स्नेह था। गुरुदेव ने सोचा होगा कि कहीं इसे ऐसा न लगे कि बंगला मुझसे बहुत गलत लिखी गयी थी । इसीलिए उन्हें ऐसा कह देना आवश्यक जान पड़ा । मैं कृतकृत्य हो गया । जरा जरा-सी गलतियों पर विद्यार्थियों को झिड़क देने वाले अध्यापक क्या जानते हैं कि वे मनुष्य के भावी निर्माण में कितनी बाधा पहुँचा रहे हैं !

मैंने गुरुदेव से परिचय होने के कुछ समय बाद से ही हिन्दी में उनकी कविताओं के विषय में लिखना शुरू किया । मैं ही जानता हूँ कि उन लेखों में कितनी त्रुटियाँ थीं । मेरे इन लेखों की कटिंग को एक बार आचार्य सेन ने गुरुदेव को दिया । उन्होंने उसे रख लिया। अपने अत्यन्त

व्यस्त कार्यक्रम के भीतर भी उन्होंने उन बालक प्रयत्नों को देखने का समय निकाल लिया और जब मैं कई दिनों बाद उनसे मिला तो बहुत ही उत्साहवर्धक शब्दों में उन्होंने कहा—बहुत अच्छा लिखा है तुमने। मुझे यह प्रसन्नता है कि तुम पढ़ कर लिखते हो। फिर जरा विनोद के साथ बोले—मुझे ऐसे समालोचक मिलते हैं जो बिना पढ़े ही लिख मारते हैं। फिर थोड़ा रुक कर किसी पुरानी बात को याद करते हुए बोले—बिना पढ़े जो आलोचना लिखी जाती है वह होती खूब है। और हँस पड़े। मैंने निःसन्देह समझा कि यह उत्साह देने के उद्देश्य से कहे हुए वाक्य हैं। अपनी त्रुटियों का मुझे बराबर ज्ञान बना रहता है उस समय भी था। परन्तु वे दो-चार वाक्य मेरे लिये कितने महत्त्वपूर्ण थे यह कोई भी सहृदय आसानी से समझ सकता है। एक दिन एक साहित्यिक ने अपने विषय में बड़े दर्प के साथ कहा कि मैं लड़कों को बढ़ावा नहीं देता अपने को सस्ता बनाना बहुत अच्छी बात नहीं है। तो मुझे रवीन्द्रनाथ की वह बात याद आ गयी। वर्द्धिष्णु युवकों को प्यारपूर्वक उत्साहित कर देना सस्ता बनना है? और यदि सस्ता ही है तो महँगा बनना क्या बहुत बड़ी बात है?

उनके पास जाने से बराबर यह अनुभव होता था कि मैं छिन्न-वृन्त तृणखण्ड की भाँति व्यर्थ ही इधर उधर मारे-मारे फिरने के लिए नहीं बना हूँ। छोटे-से छोटे जीवन की भी अपनी चरितार्थता है। एक भी ऐसा अवसर स्मरण नहीं जब उनके पास से हताश होकर लौटा होऊँ। कभी-कभी तो बढ़ावा देने के लिए अपने स्तर पर खींच ले जाते थे। कहते—देखो मैं भी पहले तुम्हारी ही तरह इन बातों से घबराता था—मानो वे और मैं एक ही स्तर के मनुष्य हों, मानो उनमें और मुझमें केवल इतना ही अन्तर था कि वे कुछ पहले दुनिया में आ गये थे और मैं कुछ बाद।

साधारण-से-साधारण बातचीत में भी वे कभी नीचे नहीं उतरते थे। उनके प्रत्येक वाक्य में उनके महिमामय व्यक्तित्व की छाप रहती

थी। पर साधारण-से-साधारण विद्यार्थी को भी यह गरिमा भार न मालूम होता था। मनुष्य की महिमा के वे प्रचारक थे और प्रत्येक मनुष्य में उसके महिमामय रूप को वे पहचान लेते थे। साधारण औरतों बालकों नौकरों तक में उस महिमा को सामने लाकर उसे खिला जाता था और यही कारण है कि वे सब के अतिप्रिय स्वजन थे। प्रत्येक बालक उन्हें उतना ही निकट का समझता था जितना कोई उसके घर-परिवार का आदमी। वे हृदय उंडेल कर स्नेह दे सकते थे और दूसरों का सम्मान पा भी सकते थे। उनका व्यक्तित्व अपूर्व था—सब प्रकार से अपूर्व।

इस समय मेरे मन में सौ-सौ बातें आ रही हैं। समझ में नहीं आता किसे सुनाऊं। जो बात सबसे अधिक मन में आती है वह यही कि महान् गुरु का शिष्य होना बड़े सौभाग्य की बात है। शान्तिनिकेतन से जो लोग कीर्तिमान होकर निकले हैं उनके निर्माण में इस अपूर्व स्नेह का कितना बड़ा हाथ है यह बात वे सभी स्वीकार करेंगे। रवीन्द्रनाथ पारस थे। जो भी उनके सम्पर्क में आया वह धन्य हो गया। उन्होंने अपनी कई कविताओं में कहा है कि जब वे इस दुनिया में न रहें तो शोक नहीं मनाना—इस दुनिया के लता फूल पेड़ पौधे—सब के भीतर वे बने रहेंगे। मृत्यु के कुछ दिन पूर्व उन्होंने एक कविता लिखी थी—जब मैं इस मर्त्यकाया में न रहूं। मूल कविता बंगला में है। उसके आरम्भ की दो-तीन पंक्तियों का हिन्दी रूपान्तर सुना देता हूं—आज इन पंक्तियों की स्मृति और भी हृदय में कचोट उत्पन्न कर रही है। कविता की आरम्भिक पंक्तियां इस प्रकार हैं—

'जब मैं इस मर्त्यकाया में न रहूं—इस क्षणभंगुर देह को छोड़ जाऊं उस समय मुझे याद करने की यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम इस निभृत शान्त छाया में आ जाना जहां यह चैत्र का शालवन खिला हुआ है।

इस कविता की अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

"तुम्हें यदि कभी मुझे स्मरण करने की इच्छा हो तो देखो, सभा न चलाना हुजूम न करना, आ जाना इस छाया में जहाँ यह चन्द्र का शाल्वन खिला हुआ है।'

रवीन्द्रनाथ चले गये—इस मर्त्यकाया को छोडकर निकल गये पर चन्द्र का शाल्वन अब भी है—उसी मस्ती के साथ खिला हुआ !

२

रवीन्द्रनाथ की दिन चर्या

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर हमारे देश के केवल महान कवि ही नहीं थे। अपने समय के श्रेष्ठ मनीषी और तत्त्वचिन्तक भी थे। उनकी दिन चर्या के संबंध में आज लोगों के मन में उत्सुकता हो यह स्वाभाविक ही है। मनुष्य के अन्तर में जो प्रकाश है वह उसके बाह्य आचरण में भी प्रकट होता है। अन्तर और बाह्य जगत एकदम असंबद्ध नहीं हैं। यह समझना कि बाहरी आचरण से आन्तरिक शुचिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ठीक नहीं है। इसलिए महापुरुषों का बाहरी आचरण भी कुतूहल और जिज्ञासा का विषय बन जाता है। वस्तुतः सत्य जब आचरित या सेवित बनता है तभी धर्म बनता है। जो विचार-आचार के रूप में नहीं उतारा गया वह केवल बात-की बात है।

मुझे कवि गुरु के आश्रम में बीस वर्षों तक रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आरम्भ के लगभग बारह वर्षों तक मैंने उनकी छाया में रहने का सुअवसर प्राप्त किया है। इन दिनों मैंने उन्हें निकट से बहुत निकट से देखने का अवसर पाया है। मैं साहित्य का विद्यार्थी रहा हूं। मुझे साहित्य में अधिक रुचि रही है। यथाशक्ति और यथाबुद्धि मैं उनके लिखे साहित्य को पढ़ने और समझने का प्रयत्न करता रहा। कभी-कभी उनसे पूछने का साहस किया और उनका स्नेह इतना अधिक था कि कभी-कभी मैं जो बातें करता था वह बहस के स्तर तक पहुंच जाती थी। इस प्रकार का व्यवहार धृष्टता नहीं तो क्या था? लेकिन मैंने न उन्हें कभी अप्रसन्न होते देखा न उन्हें बात-बुद्धि के तर्कों की उपेक्षा करते देखा। बड़े धैर्य और प्रेम के साथ वे सारी बात सुनते थे और आशय को ठीक पकड़ कर समझा देते थे। जब जब मैं उनसे मिलकर

लौटता था तब-तब ऐसा लगता था कि मैं कुछ ऊपर उठा हूँ। उनकी स्नेहसिक्त सरस परिहासपूर्ण बातचीत सदा मेरे भीतर के उत्तम को जागृत और सतेज बनाती थी। मेरे भीतर जो छोटापन है संकीर्णता है अल्पता है वह उस समय दब जाता था। वे महान गुरु थे—महान् गुरु जिनके संपर्क में आने पर शिष्य की देवत्व जागता है। उन्होंने अपने साहित्य में जो कुछ लिखा है वही उनका जीवन था। जिस सत्य के सुन्दर रूप को उन्होंने अपने काव्य में रूपान्तरित किया है उसी सत्य को उन्होंने अपने जीवन में भी चरितार्थ किया था। उनका संपूर्ण जीवन किसी श्रेष्ठतम कवि के काव्य-सा ही मनोहर और प्रभावोत्पादक था। वह जीवन भी एक काव्य ही था। भीतर से बाहर तक उनमें पवित्र आत्मज्योति की शिखा जलती रहती थी।

कविवर रवीन्द्रनाथ को मैंने वृद्धावस्था में ही देखा है। मैंने उन्हें जैसा देखा है उसी की बात कह सकता हूँ। वे बहुत तड़के उठते थे। नियम से वे ४ बजे के आसपास उठते थे। कभी इस नियम का व्यतिक्रम नहीं होता था। सन १९३१ में काफी चल फिर लेते थे। बाद में उनका टहलना कम हो गया था। चार बजे के आसपास उठकर वे अपने कमरे से बाहर निकल कर आरामकुर्सी पर चुपचाप सूर्य की ओर मुँह कर के बैठ जाते थे। गला साफ करने के लिये वे जब खाँसते थे तो निस्तब्धता में दूर तक आवाज जाती थी और लोग समझ जाते थे कि गुरुदेव अब बाहर आ गए हैं। सूर्योदय होने तक वे शान्त मौन भाव से बैठे रहते थे। उनका ध्यान और समाधि सब यही था। कम लोग ऐसे थे जो उस समय उनके समीप जा सकते थे। एक बार एक विचित्र कारण से मुझे उसी प्रत्यूषकाल में उनके निकट पहुँचने का सुयोग मिला। एक महाराष्ट्रीय सज्जन ने गीता पर कुछ लिखा था। उस पर सम्मति लेने या भूमिका लिखाने की इच्छा से वे पैदल चलकर कलकत्ता पहुँचे। फिर कलकत्ते से उसी प्रकार शान्तिनिकेतन पहुँचे। गुरुदेव के साथ रहने वाले लोगों ने उन्हें विक्षिप्त समझा और उनके पास जाने से रोक

का भाव आसानी से ग्रहण कर लेते थे। कुछ अभ्यास होने पर जिस प्रकार पढ़ा लिखा आदमी शब्द के प्रत्येक अक्षर को मिलाए बिना ही पूरे शब्द को शीघ्रता से ग्रहण कर लेता है इसी प्रकार वे पूरे पत्र के भाव को अनायास ग्रहण कर लेते थे। लिखने का काम वे प्रात काल और मध्याह्न को भी करते थे। दोपहर को वे कभी सोते नहीं थे। एक बार हँसते हुए उन्होंने कहा था कि विधाता ने मुझे बैसाख के महीने में भेजा था। उनकी इच्छा नहीं थी कि मैं धूप या गर्मी से डरूं। अंतिम वयस में गाँधीजी के कहने से दोपहर को विश्राम करने की बात मान ली थी पर सोते नहीं थे। लेटे-लेटे कुछ-न-कुछ करते रहते थे। लेटे-लेटे उन्होंने उन दिनों कितने ही सुन्दर चित्र बना डाले।

सायंकाल वे बाहर आराम कुर्सी पर बैठ जाते थे। इसी समय आश्रम वासी उनसे मिलने आते थे। न जाने कितनी संध्याएं आज भी मेरे मन में साकार हैं। न जाने कितने संस्मरण उमड़ रहे हैं। मैं प्रायः हिंदी प्रदेश के दर्शनार्थियों को लेकर उनके पास जाया करता था। स्नान भोजन के समय के अतिरिक्त उनकी अनुमति लेकर मैं किसी भी समय दर्शनार्थियों के साथ पहुँच जाता था। वे लिखते होते थे परन्तु देखते ही बड़े स्नेह से कहते—एशो (आओ) दिन भर वे या तो लिखने पढ़ने में या लोगों से मिलने में व्यस्त रहते थे। दुनिया भर से तरह तरह के लोग उनसे मिलने आते थे बातचीत (इंटरव्यू) करते थे साथ फोटो लेने का अनुरोध करते थे पुस्तकों पर या आटोग्राफ की पुस्तिका पर हस्ताक्षर कराते थे अपनी पुस्तक पढ़ने को दे जाते थे वे किसी को निराश नहीं करते थे। यह सब करके भी वे लिखने का पूरा समय निकाल लेते थे। अंतिम वयस में तो वे थक जाते थे पर लोग छोड़ते नहीं थे। उनके साथ रहने वाले चिढ़ जाते थे झल्ला उठते थे पर उनके मन में ऊब नहीं होती थी।

रवीन्द्रनाथ महामानव थे। दीर्घकालीन तपस्या के बाद मनुष्य ने जिन महनीय गुणों को पाया है उनमें एकत्र सुलभ थे। उनका हृदय प्रेम से परिपूर्ण था। वे युग-गुरु थे।

३

एक कुत्ता और एक मैना

आज से कई वर्ष पहले गुरुदेव के मन में आया कि शान्तिनिकेतन को छोड़ कर कहीं अन्यत्र जायें। स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं था। शायद इसलिए या पता नहीं क्या, तै पाया कि वे श्रीनिकेतन के पुराने तिमंजिले मकान में कुछ दिन रहें। शायद मौज में आकर ही उन्होंने यह निर्णय किया हो। वे सबसे ऊपर के तल्ले में रहने लगे। उन दिनों ऊपर तक पहुँचने के लिए लोहे की चक्करदार सीढ़ियाँ थीं और वृद्ध और क्षीणवपु रवीन्द्रनाथ के लिए उस पर चढ़ सकना असम्भव था। फिर भी बड़ी कठिनाई से उन्हें वहाँ ले जाया जा सका।

उन दिनों छुट्टियाँ थीं। आश्रम के अधिकांश लोग बाहर चले गए थे। एक दिन हमने सपरिवार उनके दर्शन की ठानी। दर्शन को मैं जो यहाँ विशेषरूप से दर्शनीय बनाकर लिख रहा हूँ उसका कारण यह है कि गुरुदेव के पास जब कभी मैं जाता था तो प्रायः वे हँस कर मुस्करा देते थे कि 'दर्शनार्थी हैं क्या?' शुरू-शुरू में मैं उनसे ऐसी बँगला में बात करता था जो वस्तुतः हिन्दी मुहाविरों का अनुवाद हुआ करती थी। किसी बाहर के अतिथि को जब मैं उनके पास ले जाता था तो कहा करता था—'एक भद्र लोक आपनार दर्शनेर जन्य एसे छेन।' यह बात हिन्दी में जितनी प्रचलित है उतनी बँगला में नहीं। इसलिए गुरुदेव जरा मुस्करा देते थे। बाद में मुझे मालूम हुआ कि मेरी यह भाषा बहुत अधिक पुस्तकीय है और गुरुदेव ने उस दर्शन शब्द को पकड़ लिया था। इसलिए जब कभी मैं असमय में पहुँच जाता था तो वे हँस कर पूछते थे—दर्शनार्थी लेकर आए हो क्या? यहाँ यह दुख के साथ कह देना चाहता हूँ कि अपने देश के दर्शनार्थियों में कितने ही इतने

प्रगल्भ हो थ कि समय-असमय स्थान-अस्थान अवस्था-अनवस्था की परवा नहीं करते थे और रोगन रहा पर भी आ ही जाते थे। ऐसे दर्शनार्थियो स गुरुदेव कठ भीत-त्रस्त रहते थ। अन्त मैं मय वार-वाना क एक दिन श्रीनिकेतन जा पहुंचा। कई दिनो म उन्हें देखा नहा था।

गुरुदेव वहाँ बड आनन्द म थ। अकले रहते थ। भीड भाड उतनी नहा होती था जितनी शान्तिनिकेतन म। जब हम लोग ऊपर गए तो गुरुदेव बाहर एक कुर्सी पर चुपचाप बठ अस्तगामी सूय की ओर ध्यान स्तिमित नयना से देख रहे थ। हम लोगो को देखकर मस्कराए बच्चो स जरा छड छाड की कुछ प्रश्न पूछे और फिर चुप हो रहे। ठीक उसी समय उनका कुत्ता धीरे धीरे ऊपर आया और उनके परो क पास खड़ा हो कर पूछ हिलान लगा। गुरुदेव न उसकी पीठ पर हाथ फरा। वह आखें मूदकर अपन रोम रोम से उस स्नेह रस का अनुभव करन लगा। गुरुदेव ने हम लोगो की ओर देखकर कहा— देखा तुमने य आ गए। कसे इन्हें मालूम हुआ कि मैं यहाँ हूँ आश्चय है! और देखो कितनी परितृप्ति इनके चेहरे पर दिखाई द रही है।

हम लोग उस कुत्ते के आनन्द को देखन लगे। किसी न उसे राह नहीं दिखाई थी न उसे यह बताया था कि उसके स्नेह-दाता यहाँ स दो मील दूर हैं और फिर भी वह पहुच गया। इसी कुत्ते को लक्ष्य करके उन्होंने आरोग्य म इस भाव की एक कविता लिखी था— प्रतिदिन प्रात काल यह भक्त कुत्ता स्तब्ध हो कर आसन के पास तब तक बठा रहता है जब तक अपन हाथो के स्पश स मैं इसका सग नहीं स्वीकार करता। इतनी-सी स्वीकृति पाकर ही उसके अग-अग म आनन्द का प्रवाह बह उठता है। इस वाक्य हीन प्राणिलोक म सिफ यही एक जीव अच्छा-बुरा सबको भेद कर सम्पूण मनुष्य को देख सका है उस आनन्द को देख सका है जिसे प्राण दिया जा सकता है जिसम अहतुक प्रेम ढाल दिया जा सकता है जिसकी चेतना असीम चतन्य लोक म राह दिखा

सकती है। जब मैं इस मूक हृदय का प्राणपण आत्मनिवेदन देखता हूँ जिसमें वह अपनी दीनता बताता रहता है तब मैं यह सोच ही नहीं पाता कि उसने अपने सहज बोध से मानव-स्वरूप में कौन-सा मूल्य आविष्कार किया है इसकी भाषा-हीन दृष्टि की करुण व्याकुलता जो कुछ समझती है उसे समझा नहीं पाती और मुझे इस सृष्टि में मनुष्य का सच्चा परिचय समझा देती है। इस प्रकार कवि की मर्मभेदी दृष्टि ने इस भाषाहीन प्राणी की करुण दृष्टि के भीतर उस विशाल मानव-सत्य को देखा है जो मनुष्य मनुष्य के अन्दर भी नहीं देख पाता।

मैं जब यह कविता पढ़ता हूँ तब मेरे सामने श्रीनिकेतन के तितल्ले पर की वह घटना प्रत्यक्ष-सी हो जाती है। वह आँख मूँद कर अपरिसीम आनन्द वह 'मूक हृदय का प्राणपण आत्मनिवेदन' मूर्तिमान हो जाता है। उस दिन मेरे लिए वह एक छोटी-सी घटना थी, आज वह विश्व की अनेक महिमाशाली घटनाओं की श्रेणी में बैठ गई है। एक आश्चर्य की बात और इस प्रसंग में उल्लेख की जा सकती है। जब गुरुदेव की चिता भस्म कलकत्ते से आश्रम में लाया गया, उस समय भी न जाने किस सहज बोध के बल पर वह कुत्ता आश्रम के द्वार तक आया और चिताभस्म के साथ अन्यान्य आश्रमवासियों के साथ शान्त-गम्भीर भाव से उत्तरायण तक गया। आचार्य क्षितिमोहन सेन सब के आगे थे। उन्होंने मुझे बताया कि वह चिताभस्म के कलश के पास थोड़ी देर चुपचाप बैठा भी रहा।

कुछ और पहले की घटना याद आ रही है। उन दिनों मैं शान्तिनिकेतन में नया ही आया था। गुरुदेव से अभी उतना घनिष्ट नहीं हो पाया था। गुरुदेव उन दिनों सुबह अपने बगीचे में टहलने के लिए निकला करते थे। मैं एक दिन उनके साथ हो गया था। मेरे साथ एक और पुराने अध्यापक थे और सही बात तो यह है कि उन्होंने ही मुझे भी अपने साथ ले लिया था। गुरुदेव एक एक फूल-पत्ते को ध्यान से देखते हुए अपने बगीचे में टहल रहे थे और उक्त अध्यापक महाशय से बातें करते जा

रहे थे। मैं चुपचाप मनना जा रहा था। गुरुदेव न बातचीत के सिलसिले में एक बार कहा— अच्छा साहब आश्रम के कौए क्या हो गए ? उनकी आवाज सुनाई ही नहीं देती ? न तो मेरे साथी उन अध्यापक महाशय को यह खबर थी और न मुझे ही। बाद में मैंने लक्ष्य किया कि सचमुच कई दिनों तक आश्रम में कौए नहीं दीख रहे हैं। मैंने तब तक कौआ को सर्वव्यापक पक्षी ही समझ रखा था। अचानक उस दिन मालूम हुआ कि ये भी आत्मा भी कभी-कभी प्रवास को चले जाते हैं या चले जाने को बाध्य होते हैं। एक लेखक ने कौओं की आधुनिक साहित्यिकों से उपमा दी है क्योंकि इनका मोटो है— मिसचीफ फार मिसचीफ सेक (शरारत के लिए ही शरारत)। तो क्या कौओं का प्रवास भी किसी शरारत के उद्देश्य से ही था ? प्रायः एक सप्ताह के बाद बहुत कौए दिखाई दिए।

एक दूसरी बार मैं सवेरे गुरुदेव के पास उपस्थित था। उस समय एक लगड़ी मैना फुदक रही थी। गुरुदेव ने कहा— देखते हो यह यूथ भ्रष्ट है। रोज फुदकती है ठीक यहीं आकर। मुझे इसकी चाल में एक करुण भाव दिखाई देता है। गुरुदेव ने अगर कह न दिया होता तो मुझे उसका करुणभाव एकदम नहीं दीखता। मेरा अनुमान था कि मैना करुण भाव दिखाने वाला पक्षी है ही नहीं। वह दूसरों पर अनुकम्पा ही दिखाया करती है। तीन चार वर्ष से मैं एक नए मकान में रहने लगा हूं। मकान के निर्माताओं ने दीवारों में चारों ओर एक-एक सूराख छोड़ रखा है। यह कोई आधुनिक वैज्ञानिक खतरे का समाधान होगा। सो एक एक मैना-दम्पति नियमित भाव से प्रतिवर्ष यहाँ गृहस्थी जमाया करते हैं। तिनके और चीथड़ों का अम्बार लगा देते हैं। भलेमानस गोबर या टट्टी तक ले आना नहीं भूलते। हैरान होकर हम सूराखों में ईंटें भर देते हैं परन्तु वे खाली बची जगह का भी उपयोग कर लेते हैं। पति पत्नी जब कोई एक तिनका लेकर सूराख में रखते हैं तो उनके भाव देखने लायक होते हैं। पत्नी देवी का तो क्या कहना ! एक तिनका

से आए तो फिर एक पैर पर खड़ा होकर जरा पंखों को फटकार दिया, चोंच को अपने ही परों से साफ कर लिया और नाना प्रकार की मधुर और विजयोद्घोषी वाणी में गान शुरू कर दिया । हम लोगों की तो उन्हें कोई परवा ही नहीं रहती । अचानक इसी समय अगर पति देवता भी कोई कागज का या गोबर का टुकड़ा ले कर उपस्थित हुए तब तो क्या कहना ! दोनों के नाच-गान और आनन्द-नृत्य से सारा मकान मुखरित हो उठता है । इसके बाद ही पत्नी देवी जरा हम लोगों की ओर मुखातिब हो कर लापरवाही भरी अदा से कुछ बोल देती हैं । पति देवता भी मानो मुस्कराकर हमारी ओर देखते कुछ रिमार्क करते और मुँह फेर लेते हैं । पक्षियों की भाषा तो मैं नहीं जानता पर मेरा निश्चित विश्वास है कि उनमें कुछ इस तरह की बातें हो जाया करती हैं—

पत्नी—ये लोग यहाँ कैसे आ गए जी ?

पति—उँह बेचारे आ गए हैं तो रह जाने दो। क्या करेंगे !

पत्नी—लेकिन फिर भी इनको इतना तो ख्याल होना चाहिए कि यह हमारा प्राइवेट घर है ।

पति—आदमी जो हैं इतनी अक्ल कहाँ ?

पत्नी—जाने भी दो ।

पति—और क्या ?

सो इस प्रकार की मैना कभी करुण हो सकती है यह मेरा विश्वास ही नहीं था । गुरुदेव की बात पर मैंने ध्यान से देखा तो मालूम हुआ कि सचमुच ही उसके मुख पर एक करुण भाव है । शायद यह विधुर पति था जो पिछली स्वयंवर-सभा के युद्ध में आहत और परास्त हो गया था । या विधवा पत्नी है जो पिछले बिड़ाल के आक्रमण के समय पति को खोकर युद्ध में ईषत् चोट खाकर एकांत विहार कर रही है । हाय क्यों इसकी ऐसी दशा है ! शायद इसी मैना को लक्ष्य करके गुरुदेव ने बाद में एक कविता लिखी थी जिसके कुछ अंश का सार इस प्रकार है—

उस मना को क्या हो गया है यही सोचता हूँ। क्या वह दल से अलग होकर अकेली रहती है? पहले दिन देखा था शमर के पेड़ के नीचे मेरे बगीचे में। जान पड़ा जरा पैर पर से लंगड़ा रही हो। इसके बाद उसे रोज़ सबेरे देखता हूँ—संगीहीन होकर कीड़ों का शिकार करती फिरती है। चढ़ जाती है बरामदे में। नाच-नाचकर चहलकदमी किया करती है मुझसे ज़रा भी नहीं डरती। क्या है ऐसी दशा इसकी? समाज के किस दण्ड पर उसे निर्वासन मिला है दल के किस अविचार पर उसने मान किया है? कुछ ही दूरी पर और मनाएँ बक-बक कर रही हैं घास पर उछल-कूद रही हैं उड़ती फिरती है सिरीष वृक्ष की शाखाओं पर। इस बेचारी को ऐसा कुछ भी शौक नहीं है। इसके जीवन में कहाँ गाँठ पड़ी है यही सोच रहा हूँ। सबेरे की धूप में मानो सहज मन से आहार चुगती हुई झड़े हुए पत्तों पर कूदती फिरती है सारा दिन। किसी के ऊपर इसका कुछ अभियोग है यह बात बिल्कुल नहीं जान पड़ती। इसकी चाल में वैराग्य का गर्व भी तो नहीं है दो आग-सी जलती आँखें भी तो नहीं दिखतीं। इत्यादि।

जब मैं इस कविता को पढ़ता हूँ तो उस मैना की करुण मूर्ति अत्यन्त साफ होकर सामने आ जाती है। कैसे मैंने उसे देखकर भी नहीं देखा और किस प्रकार कवि की आँखें उस बिचारी के मर्मस्थल तक पहुँच गईं सोचता हूँ तो हैरान हो रहता हूँ। एक दिन वह मैना उड़ गई। सायंकाल कवि ने उसे नहीं देखा। जब वह अकेले जाया करती है उस डाल के कोने में जब झींगुर अंधकार में झनकारता रहता है जब हवा में बाँस के पत्ते मरमराते रहते हैं पेड़ों की फाँक से पुकारा करता है नींद तोड़ने वाला सन्ध्यातारा! कितना करुण है उसका गायब हो जाना!

४

प्रयाग मे कवि रवीन्द्र

सन् १९१४ के शीतकाल म एक बार कविवर रवीन्द्रनाथ प्रयाग गये थे। वहाँ वे प्राय एक मास रहे। इस बीच उन्होंने चार कविताएँ लिखी जो बलाका म एक ही जगह संग्रहीत हैं। ये चारों कविताएँ बडी लोकप्रिय हो गई हैं। इनमे सबसे अधिक प्रचार हुआ है ताजमहल वाली कविता का। यह कविता है भी वस्तुत इसी योग्य। तीर्थराज प्रयाग म बैठकर भारतेश्वर शाहजहाँ के प्रेम के स्मारक शाहमहल ताजमहल को लक्ष्य कर के लिखी गई कवि-सम्राट की यह कविता सचमुच ही कविताओ की रानी हुई है। कवि ने ताजमहल का एक ही शब्द म इस यथार्थरूप म चित्रित कर लिया है कि उससे अधिक वह सकना शायद सम्भावना की सीमा के बाहर ह—बस कहना अनुचित—

'हे सम्राट कवि
एइ तव हृदयर छवि
एइ तव नव मेघदूत
अपूर्व अद्भुत !

कविकुल-गुरु कालिदास के मेघदूत से तुलना करके कवि ने ताजमहल के बारे म सब कुछ कह लिया है। उस अद्भुत काव्य के मन्दाक्रान्ता का प्रत्येक पंक्ति पर विरही विश्व की अपार वेदना के भार से क्रान्त है। कितनी विशाल अनुभूति का केन्द्र था वह कवि का हृदय ! और ताजमहल ! सम्राट कवि के हृदय का वह चित्र ? यह तो उस महान् हृदय प्रेम पारावार के गम्भीर आशय की एक झलकमात्र है—शुधू एक बिन्दु नयनर जल !

कवि के विरही यक्ष का हृदय जब धातुराग से लिखित शिलापट्टी की प्रेयसी के सामने प्रणय अनुनय करना चाहता था उस समय क्रूरकृतान्त उसका बाधक जरूर था फिर भी सारा विरह इस मधुर आशा से मधुमय हो उठा था कि एक दिन प्रिया के पास तक यह बात पहुँच जायगी। प्रीतिस्निग्ध मेघ यह सन्देश लेकर जायगा कि—

> त्वामालेख्य प्रणय कुपितां धातुरागैः शिलायां
> आत्मानं ते चरण पतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
> अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
> क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः।

किन्तु हाय सम्राट कवि के हृदय की कोई भी साध क्या इस दूत से पूरी हो सकती है ? मनुष्य के हृदय की सारी करुण वेदना इस एक प्रमिका के हृदय से देखी जा सकती है। संचय जहाँ-का तहाँ पड़ा रह जाता है सहसा कहीं का निमन्त्रण आ जाता है और सब छोड़ छाड़ कर चल देना पड़ता है—

> हाय ओरे मानव हृदय बार-बार
> कारो पाने फिरे चाहिबार
> नाइ ये समय नाइ-नाइ !!
> जीवनेर खरस्रोते भासिछ सदाइ
> भुवनेर घाटे घाटे
> एक हाटे लओ बोझा शून्य कर दाओ अन्य हाटे।

कितनी करुण दशा है इस मानव हृदय की ! किन्तु नहीं सारा संसार इसी करुण संगीत में सना हुआ है। ए मनुष्य के हृदय संचय के उपभोग का समय किसी के पास नहीं है। देखते नहीं—

> दक्षिणेर मन्त्र गुंजरणे
> तव कुंज वने
> वसन्तेर माधवी-मंजरी

येई क्षणे देय भरि'
मालचेर चचल अचल
विदाय गोधूलि आन धूलाय छडाये छिन्न दल ।'

आखिर उस सम्राट कवि को भी विदाई लेनी पडी। रह गया वह अपूर्व अद्भुत मेघदूत जो आजकल की बडी तोडकर उसकी विदाई का गान गा रहा है—

'सेइ बीज अमर अकुरे
उठेचे अम्बर पाने
कहिछे गम्भीर गाने—
यत दूर चाइ
नाइ नाइ से पथिक नाइ !!"

यहा पर कवि अपने प्रसारित बाहु को समेट कर सारे विश्व की वदना आत्मसात कर लेता है और पाठक के हृदय पर—शायद कुछ वरहमी के साथ ही—उडल देता है। कविता समाप्त करके हृदय भाराक्रान्त हो जाता है—

'प्रिया तारे राखिल ना, राज्य तारे छेडे दिल पथ
रुधिल ना समुद्र पर्वत
आजि तार रथ
चलिया छे रात्रिर आह्वाने
नक्षत्रर गाने
प्रभातर सिंहद्वार पाने
ताइ
स्मृति भारे आमि पडे आछि
भार मुक्त से एखाने नाइ !"

* * *

बलाका की कविताओं में एक अदभुत प्रवाह है। इसके सभी छन्द

बगला-साहित्य म नय हैं। कवि न ही इन्हें पहल-पहल इस साहित्य म परिचित कराया है इसीलिए बलाका—छन्द भाषा भाव सब ओर से—अतुल है। भाषा का इतना प्रचण्ड प्रवाह तुलसीदासजी की विनय पत्रिका को छोड कर मुझ अन्यत्र कहा नही दिखाई दिया। जिन चार कविताओ के स्खलित अनुवाद आग दिय गय हैं उन सब म सहृदय पाठक आसानी से उक्त कथन की सत्यता का प्रमाण पा सकते हैं। एक बार इस प्रवाह म पडकर बहना ही पडता है। स्वय कवि को विवशता के साथ बहना पडा है वह एकाधिक बार मयूर की भाँति अपन सौन्दय पर आप ही नाच उठा है। प्रथम तीन कविताओ म कवि न स्पष्ट ही अपन को अपनी कविता क प्रवाह म बहा दिया है—तीनो ही कविताओ मे उसे प्रयत्नपूवक सम्हलना पडा है। पहली कविता म वह कहता है—

चलियाछि दूर हत दूर
मेतेछि पथर प्रमे
तुमि पथ ह'ते नमे य खान दाडाले
से खानइ आछ थमे।
एई तण एई धूलि—ओइ तारी रवि
सबार आडाले
तुमि छबि—तुमि शुधू छबि।

यहाँ तक वह बहता ही चला जाता है फिर अचानक कहता है—

कि प्रलाप कहे कवि
तुमि छबि ?
नहे नहे नओ शुधू छबि!

इसी तरह ताजमहल वाली कविता म कवि कहता ह—

तोमार सौन्दय दूत यग-यग धरि
एडाइया कालेर प्रहरी
चलियाछ वाक्यहारा एइ वार्ता निया
भूलि नाइ भूलि नाइ, भूलि नाइ प्रिया।'

अपने प्रवाह में वहा हुआ वह इसे फिर दुहराता है—

"तबुओ तोमार दूत अमलिन
श्रान्ति क्लान्ति हीन
तुच्छ करि राज्य भाङ्गा गडा
तुच्छ करि जीवन मत्युर ओठा पडा
यग युगान्तरे कहितेछे एक स्वरे
चिर विरहीर वाणी निया
भूलि नाइ भूलि नाइ, भूलि नाइ प्रिया।'

यही पर कवि एक वार सम्हलता है—

मिथ्या कथा—के बले ये भोलो नाइ ?
के बले रे खोलो नाइ
स्मतिर पिंजर द्वार ?"

तीसरी कविता म जिस विराट नदी की चर्चा है वह कुछ मामली नदी नही है। इसी के कायाहीन वग के प्रचण्ड आघात से विश्व म यह वस्तुरूप फन दिखाई द रहे हैं इसके घूर्णचक्र म सारा ज्योतिष्क पुज बुलबुले की भाँति नष्ट हो रहा है इस उन्मत्त अभिसार के फलस्वरूप इसके वक्षस्थल म जो उत्कम्प होता है उससे नक्षत्रो की मणियाँ बिखर पडती हैं शून्य का अन्धकार इसी के वात्याहत अस्तव्यस्त कवरीराजि का स्वरूप है इसी क चचल अचल से तृण पल्लव फूट पड हैं और इसी की ऋतुस्याही से नाना वर्ण के विचित्र पुष्प बिखर पड है—यह नियति की उद्दाम वगवती सरिता है—सदा पवित्र सदा चचल सदा कमठ सदा नत्यमय ! नदी क उद्दाम वेग क साथ कविता का ताल इस खूवी से मिला हुआ है कि कवि भी उसी म वह जाता है उसे अपनी बात हो भूल गई है। हठात उसे याद आता है—है ! मैं भी तो प्रवाहमय हूँ—एक अजस्र प्रवाहमय ! कहता है—

'ओर कवि तोर आज करचे उतला
झकार मुखरा एइ भुवन मेखला

शल्शिन घरणर अशरण अवारण धारा ।
नाड़ीते नाड़ीते तोर चचलर ध्वनि पद ध्वनि
वक्ष तोर उठ रन रनि
नाहि जान केउ
रक्ते तोर उठ आजि समुद्र ढउ
काँप आजि अरण्यर व्याकुलता
मन आजि पड सेइ कथा
युग युग एसेचि चलिया
स्खलिया स्खलिया
चुप चुप
रूप ह'त रूप
प्राण ह'त प्राणे ।

सा भी ठीक इसी तरह लुटाता हुआ—

'निशीथ प्रभाते
या किछु पयचि हाते
एसेचि करिया क्षय दान ह'ते दान
गान ह'त गाने ।

अच्छा अब इन कविताओं के अनुवाद सुनिए—

[१]

तुम क्या केवल चित्र हो ? केवल पट पर अंकित चित्र ?—व सुदूर की नीहारिकाएं जो आकाश के घोसले में भीड़ किये हुए हैं व अंधकार के यात्री— ग्रह तारा सूर्य—जो दिन रात हाथ में मशाल लिये चले जा रहे हैं—क्या तुम उन्हीं के समान सत्य नहीं हो ? हाय चित्र तुम केवल चित्र हो ।

इस चिर चंचल (जगत) के भीतर तुम शान्त होकर क्या रहती हो ? हे मार्गहीन । पथिकों के संग हो लो । रात दिन सब के बीच रहकर भी सब से इतना दूर—स्थिरता के चिर-अन्तःपुर में—क्यों रहती हो ? यह

धूलि (अपना) धूसर अचल उठा कर वायु की सहायता से चारा आर दौड रही है वनाख म वह तपस्विनी धरणी के विधवा-आभरण खोलकर उस गरिक (आवरण) स सजाती है और वसन्त की मिलन उषा मे उसके अगा पर पत्र-लेख लिख देती है—हाय यह धूलि यह भी ता सत्य है —यह तण जो विश्व के चरण-तल म लीन है य जो अस्थिर हैं इसीलिए सब सत्य हैं ! तुम स्थिर हा तुम चित्र—तुम कवल चित्र हो !

एक दिन तुम इसी रास्ते पर हमारी बगल म ही चली था । तुम्हारा वक्षस्थल नि श्वास स हिल्ल करता था प्रति अग म तुम्हारा प्राण कितने ही गाना और कितने ही नाचो (के रूप) म विश्व-तान क साथ ताल देता हुआ नय-नय छन्द रचा करता था (हाय) वह आज बहुत दिनो की बात हो गई ! इस जीवन म—मरी दुनिया म—तुम कितनी सत्य थी ! तुमन ही मेरी आँखा म, इस निखिल विश्व म चारा ओर रूप की तूलिका धारण कर के रस की मूर्ति लिखी थी । उस दिन के प्रभातकाल म तुम्हा तो इस विश्व की मूर्तिमती वाणी था ।

एक ही साथ रास्ता चलते-चलते (एक जगह) रात्रि की आट म तुम रुक गई । इसके बाद मैं कितन ही दु ख-सुख म रात दिन (बराबर) आग बढता रहा हूँ । आकाश और जल प्रान्तर म आलोक और अधकार का ज्वार भाटा चला है रास्ते के दोना ओर नाना वण क पुष्पा के दल नीरव पदविक्षप करते हुए चले हैं और दुरन्त जीवन निझरिणी मत्यु की किंकिणी बजाकर छूट चली है । अज्ञात के सुर के साथ—दूर से सदूर को चला हू—रास्ते के प्रम म मतवाला हो उठा हू । (और) तुम रास्ते से उतर कर जहा खडी हा गइ वहीं रुकी हो । यह तृण यह धलि व तार व सूय चन्द्र—सबकी ओट म तुम चित्र—कवल चित्र हो !

कवि यह कसा प्रलाप कर रहा है ? तुम चित्र हो ? नहीं नहीं केवल चित्र नहीं हो ! कौन कहता है कि तुम रखा के बन्धन म—निस्तब्ध

प्रदा के रूप म—स्थिर हो ? हाय-हाय अगर यह आनन्द रह जाता तो यह नदी अपना तरग-वग भूल जाती और यह मघ अपना मौन का लेख मिटा देता । तुम्हार चित्र चिपटा की छाया निन्द ने यदि हर जाती ता एक दिन पथ की धारा पना से सौगन्धित माधवी वन की ममरध्वनि ता मगर वह छाया गगन की मगन हो गई होती।

तुम्ह क्या मैं भूल गया हूँ ? तुमन जो जीवन क मूल म ही डरा डाल लिया है इसीलिए यह भूल है। (जब मैं) अयमनस्क भाव स पथ पर चलता हूँ तो क्या फूल को नहा भूल जाता ताराओ को नहा भूल जाता ? फिर भी व प्राण क नि श्वासो को मधुर कर देत हैं और विस्मृति की शून्यता म एक सुर भर देते हैं। यह भूलना ता भूलना नहा है । विस्मृति क ममस्थल म बठकर तुमने मर रक्त म हिलारें दे दी हैं। तुम आखो के सम्मुख नही हो—तुमन आँखो क बाच मे जो अपना स्थान बना लिया ह इसीलिए आज तुम श्यामल म श्याम और नीलिमा म नील हो । मरा सवस्व तुम मे अपना आतरिक मिलन पा गया है। मैं नहीं जानता—कोई भी नही जानता—कि तुम्हारा ही सर मेर गान म बजता है कवि के भीतर तुम कवि हो चित्र नही हो—नहीं-नहीं, तुम केवल चित्र नही हो ।

किसी प्रभात म तुम्ह पाया था रात म खो दिया और (आज) अधकार म अगोचर म तुम्हा को पाता हू। चित्र नहा हो तुम चित्र नहा हो ।

[२]

ए भारतश्वर शाहजहाँ तुम यह बात जानने थ कि समय के प्रवाह म जीवन यौवन धन और मान सब बह जाता है। तुम सम्राट की यही साधना था कि तुम्हारा अन्तर्वेदना चिरतन होकर रह । वज्र-कठिन राजशक्ति यदि सन्ध्या का नीलिमा क समान तन्द्रा क नाच लीन हो

जाती है, तो हो जाय, केवल एक दीर्घ निःश्वास नित्य उच्छ्वसित हो कर आकाश को सकरुण करता रहे—तुम्हारे मन की यही साध थी। हीरा मोती और मणियों की घटा शून्य दिगन्त के इन्द्रजाल इन्द्रधनुष की छटा की भाँति यदि लुप्त हो जाती है तो हो जाय केवल एक बूँद आँसू का आँसू—यह शुभ्र समुज्ज्वल ताजमहल—काल के कपोल-प्रान्त पर बच रहे।

हाय रे मनुष्य का हृदय किसी की ओर बार-बार देखने का समय कहाँ है? ना ना वह नहीं है! तुम तो संसार के इस घाट से उस घाट तक जीवन के तीव्र स्रोत में बह जा रहे हो—एक बाजार में बोझा लेते हो, और दूसरे में खाली कर जाते हो! दक्षिणी हवा के मन्त्र गुंजार से तुम्हारे कुंजवन में वसन्त की माधवी मंजरी मालंच* के चंचल अंचल को ज्यों ही भर देती है त्यों ही विदाई की गोधूलि आकर उसकी छिन्न पंखुड़ियों को धूलि में बिखेर देती है! समय कहाँ है? इसीलिए तुम फिर शिशिर की रात्रि में हेमन्त के अश्रु-गद्गद आनन्द का साज सजाने के लिए अपने निकुंज में नूतन कुन्द-पुष्पों की पंक्ति सजा देते हो। (किन्तु) हाय रे हृदय अपने इस संचय को प्रातःकाल और सायंकाल पर फेंक कर चल देना पड़ता है। समय जो नहीं है—ना-ना वह नहीं है!

इसीलिए हे सम्राट! तुम्हारे शंकित हृदय ने समय का सौन्दर्य में भुला कर उसका हृदय हरना चाहा था। उसके गले में कौन सा हार पहनाकर तुमने रूपहीन मरण का मृत्युहीन अनुपम साज में वरण किया था? विलाप का अवकाश बारहों महीने नहीं रहता, इसीलिए तुमने अपने अशान्त क्रन्दन को चिर-मौन के जाल से एक कठिन बंधन में बाँध दिया था। चाँदनी रात में एकान्त में तुम प्रेयसी को जिस नाम

---

*मालंच—लताओं को ऊपर उठाने के लिए उपवनों में लकड़ी आदि का एक ठाट बनाया जाता है। इसीको मालंच कहते हैं।

स घुल्माया गया थ यगी गाना-गाना की पुकार यगी आ में थान म रग गय हा । प्रम थी वह करण कामल्ता प्रगाड पापाण म सौन्य क पुण पुंज क रूप म फुट पड़ा है ।

ह सम्राट कवि ! यह तुम्हारे हृदय का चित्र है यह तुम्हारा अपूर्व अद्भुत नया मेघदूत है जो अपने छन्द और गानों में रूप म अरूप की ओर उठा है जहाँ तुम्हारी विरहिणी प्रिया प्रभात में अरुण आभास म वसन्त माधुर्य दिगन्त के करुण निश्वास म पूर्णिमा म सिमटी हुई चमेली के दन्तान लावण्य विलास म भाषा के अतीत किसी कूल म मिल गई है जहाँ स भिखारिणी आँखें बार-बार लौट आती हैं । तुम्हारा सौन्दर्य-दूत युग-युगान्तर स काल के प्रहरों स बचता हुआ निर्वाक हो कर यह सदेश ले कर चला है— ह प्रिया ! मैं तुम्हें नहीं भूला हूँ नहीं भूला हूँ नहीं भूला हूँ ।

महाराज आज तुम चले गये हो तुम्हारा राज्य स्वप्न के समान नष्ट हो गया—सिंहासन टूट गया है । तुम्हारे उन सैन्यदलों की जिनके चरण भार से धरती तिलमिला उठती थी यादगार आज हवा के झोंकों के साथ दिल्ली के रास्ते की धूल पर उड़ जाती है वन्दी गान नहीं गाते यमुना के कल-कल्लोल के साथ नौबत अपनी तान नहीं मिलाती , हाय र तुम्हारी पुर-सुन्दरियों के नूपुरों की रुन झुन टूट खंडहरों के कोनों म मरकर झिल्ली की आवाज के रूप म रात्रि के आकाश को रुला देती हैं ! फिर भी तुम्हारा यह श्रान्ति-क्लान्तिहीन अम्लान दूत रागों का बनना बिगड़ना जीवन और मृत्यु का चढ़ाव उतार तुच्छ करके युग युगान्तर से चिर विरही की एक ही वाणी एक ही स्वर म कह रहा है— ह प्रिया ! मैं तुम्हें नहीं भूला हूँ नहीं भूला हूँ नहीं भूला हूँ ।

झूठी बात !—कौन कहता है कि तुम नहीं भूले ? और कौन कहता है कि तुमने स्मृति के पिंजड़े का दरवाजा नहीं खोला ? क्या अतीत का चिन्तन ग्रस्त अन्धकार आज भी तुम्हारा हृदय बाँधे है ? क्या विस्मृति के मुक्त मार्ग स वह बाहर नहीं हो गया ? यह समाधि मन्दिर चिरकाल

स इसी जगह स्थिर हो रहा है पथ्वी की धूल म रह कर मरण को इसने यत्नपूर्वक स्मरण के आवरण में ढक रखा है। जीवन को कौन रख सकता है। आकाश का ओर तारिकाए उस बुला रहा हैं उसका निमन्त्रण लोक-लोक स नूतन पूर्वाचल के प्रत्येक आलोक स आ रहा है। स्मरण की गाँठ टूट जाती है और वह (जीवन) बन्धनविहीन होकर विश्व-पथ का ओर छूट पडती है!

महाराज कोई भी महाराज्य तुम्हे किसी दिन नहीं पकड सका। हे विराट! यह समुद्रस्तनित पृथिवी तुम्हे नहीं भर सकी अतएव जीवन उत्सव के अन्त म इस पृथिवी को मिट्टी के बर्तन की तरह दोनो पैरो स ठेल कर छोड-छाड कर तुम चल दिये। अपनी कीर्ति की अपेक्षा तुम महान् थे तभी तो तुम्हारे जीवन का रथ इस कीर्ति को बार-बार पीछे छोड जाता है, इसीलिए तुम्हारा चिह्न तो यहा है पर तुम नहीं हो।

जो प्रेम सामने चलना चलाना नहीं जानता जिस प्रेम ने रास्ते म अपना सिंहासन डाल रखा था—उसके विलास सम्भाषण ने रास्ते की धूल की तरह तुम्हारा पैर जोर स पकड रखा था—उसे तुमने धूल को ही लौटा दिया है। तुम्हारे पीछे की उसी पद धूलि पर हवा के सहारे तुम्हारे चित्त स सहसा (अनजान) कब जीवन की माला से खिसककर एक बीज गिर पडा था। आज तुम दूर चले गये हो वह बीज अमर अंकुर के रूप म आकाश की ओर उगा है, और गम्भीर गान के रूप म वह रहा है— जितना दूर तक देखता हूँ वह पथिक नहीं है, नहीं है।

प्रिया उसे न रख सकी, राज्य न उसके लिए रास्ता छोड दिया समुद्र और पर्वत उसका पथ रोध न कर सके। आज उसका रथ रात के बुलावे से नक्षत्रो के गान के रूप म प्रभात के सिंहद्वार का ओर चला है। इसीलिए मैं यहा स्मृति के भार स दबा हुआ पडा हूँ वह भार-मुक्त (अब) यहाँ नहीं है।

[३]

हे विराट नदी ! तुम्हारा अदृश्य नि नाद जल अनवरत अविच्छिन्न अविच्छिन्न भाव से बह रहा है। तुम्हारे रव शब्दहीन वेग से स्पन्दन से शून्य सिहर उठता है वस्तुहीन प्रवाह के प्रचण्ड आघात से राशि राशि वस्तु फन जग उठते हैं आलोक की तारा उग धावमान अन्धकार से पतित हो हो तुम्हारे प्रत्येक वर्णमाला पर निर्झरित (अनुरंजित)हो उठती है और तुम्हारे स्तर-स्तर में (प्रत्येक तह में) सूर्य चन्द्र-तारे तुम्हारे घूर्णावर्त (आवर्त) में भन्न भन्न कर बुद्बुद की भाँति मर जाते हैं।

हे भैरवी अरी ओ वैरागिणी तुम जो निरुद्देश चली हो वही तुम्हारा चलना तुम्हारी रागिणी—तुम्हारा शब्दहीन स्वर है। यह अन्तहीन दूर क्या तुम्हें निरन्तर आवाज दिया करता है ? आह उसका यह प्रेम सब त्यागी प्रेम है तभी तो तुम गृहत्यागिनी हो ? इस उन्मत्त अभिसार के कारण तुम्हारे वक्षस्थल के हार में बारम्बार आन्दोलन हो रहा है— या ही नक्षत्रों की मणियाँ बिखर पड़ती हैं तुम्हारी यह वात्याहत अस्त व्यस्त केशराजि शून्य में अन्धकार कर के उड़ती है विद्युत के कुण्डल हिल जाते हैं तुम्हारा आकुल अंचल वन वन में कम्पित तृण और चंचल पल्लवों के रूप में फहराने लगता है तुम्हारी ऋतु की धारा से बारम्बार रास्ते रास्ते जूही चम्पा मौलसिरी और पारुल पुष्प झड़ पड़ते हैं।

तुम केवल दौड़ती हो दौड़ती हो और वेग से दौड़ती हो—उद्दाम भाव से दौड़ती हो फिरकर देखती भी नहीं। तुम्हारे पास जो कुछ है उसे दोनों हाथों से लुटाती चली जाती हो। कुछ बटोर नहीं लेती कुछ संचय नहीं करती न तुम्हें शोक है न भय रास्ते के आनन्दवेग में पाथेय (राह खर्च) अबाधरूप से खर्च करती जाती हो।

जिस क्षण तुम पूर्ण हो जाती हो उस क्षण तुम्हारा कुछ भी नहीं

रह जाता। इसीलिए तुम पवित्र हो। तुम्हारे चरण-स्पर्श से विश्व-धूलि प्रतिक्षण अपनी मलिनता भूल जाती है, तुम्हारे प्रत्येक पग से मृत्यु प्राण हो जाती है।

यदि तुम क्षण भर के लिए थक कर ठहर जाओ तो उसी समय विश्व चौंक कर उठे, पड़े राशि-राशि वस्तुओं के पर्वतों में बढ़ भर जाय, लँगड़ी गूँगी, बधिर कबंध की मोटी-मुचंडी भयंकरी बाधा सब को रोक कर रास्ते में खड़ी हो जाय, छोटा-से-छोटा परमाणु अपने भार से ही—जो सारे संचय के चिर विकार का फल है—विद्ध हो जाय। सो भी आकाश के मर्मस्थल की जड़ में—कलुष वेदना के शूल के रूप में।

हे नटी, ओ चंचल अप्सरा, ओ अलक्ष्य सुन्दरी, तुम्हारी यह नृत्य मन्दाकिनी नित्य स्रवित हो-होकर मृत्यु के स्नान से विश्व का जीवन पवित्र कर देती है। अपाप निर्मल आकाश में रह विश्व का जीवन विकसित कर रहा है।

अरे कवि, आज यह झंकार-मुखर भुवन-मेखला (नटी) के अलक्षित चरणों का अकारण अवारण संचार तुझे उतावला किये है। नस नाड़ियों में (किसी) चंचल की पदध्वनि सुन रहा हूँ। तेरा वक्षःस्थल स्पंदित हो उठा है। कोई नहीं जानता कि तेरे रक्त में आज समुद्र की तरंगें नाच रही हैं, अरण्य की व्याकुलता काँप रही है। आज वही बात याद आती है—युग-युगान्तर में स्खलित हो-होकर चुपचाप रूप से रूप में, प्राण से प्राण में संक्रमित होता हुआ चला जा रहा हूँ। आधी रात हो या प्रातःकाल, जब जो हाथ में आया है, सब-कुछ लुटाता आया हूँ—दान में दान को, गान में गान को।

अरे देख, वही प्रवाह दौड़ रहा है, नाव थरथर काँप रही है। पड़ा रहे तेरा किनारे का संचय किनारे ही पर, तू उधर फिर कर भी न देख! सम्मुख की वाणी तुझे पीछे के महान्धकार से खींच कर महास्रोत में ले जाय—अतल अंधकार में, अकूल आलोक में।

[४]

हे पाषाण तुम्हें किसने प्राण दिया ? कौन तुम्हारे लिए प्रतिदिन इस अमृत रस को जुटा देता है ?—शायद तो तुमने देवलोक की ओर पृथिवी की आनन्दमंजरी धारण कर रखा है तभी तो बारहो महीने अवगाढ़ बसन्त की विदाई का उच्छ्वास निःश्वास तुम्हें घेर कर वहा करता है। मिलन रात्रि के उपान्त में वगलत आँसू और धूमिल दीपालोक में जितने अश्रुगलित गान थे सभी समाप्त हो गये पर हे अमर पाषाण तुम्हारे अन्तस्तल में वे आज भी असमाप्त होकर जग रहे हैं।

वह राज विरही अपने विदीर्ण हृदय से विरह का वह रत्न बाहर निकाल लाया। लाकर सबके सामने विश्वलोक के हाथ में दे दिया। वहाँ आज सम्राट के पहरेदार सिपाही नहीं हैं (केवल) दसों दिशाएँ उसे घेर कर पकड़े हुए हैं। आकाश यत्नपूर्वक उस पर अपना नीरव चिरन्तन चुम्बन रख देता है प्रभात अरुण अपनी रतनारी शोभा—प्रथम मिलन की प्रभा—उसे दे देता है ज्योत्स्ना विरह की उदास हँसी हँस कर अपने पाण्डर आभास से उसे करुण कर देती है।

हे सम्राट महिषी तुम्हारे प्रेम की स्मृति सौन्दर्य से महत्तर हो गई है। वह स्मृति तुम्हें छोड़कर जीवन के अलक्ष्य आलोक के साथ निखिल लोक में फैल गई है। उस अनंग स्मृति ने अंग धारण कर के सम्राट के प्रेम को विश्व की प्रीति में मिला दिया है। उसने राज-अन्तःपुर से तुम्हारे गौरव-मुकुट को बाहर निकाल लिया है—राजा के महलों से लेकर दीन की कुटिया तक जहाँ कहाँ जिस किसी की प्रेयसी है सब के सिर पर पहना दिया है। तुम्हारे प्रेम की स्मृति ने सब को महत्त्व शालिनी बना दिया।

सम्राट का मन उनका धन जन सब ने इस राजकीर्ति से विदा ले ली है आज सर्वमानव-वेदना इस पाषाण-सुन्दरी को आलिंगन से घेर कर रात दिन साधना कर रही है।

कृतित्व

५

मृत्युंजयी रवीन्द्रनाथ

[१]

संवत् २००४ में सावन के महीने में कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर हमें सदा के लिए छोड़ कर चले गए थे। वे उन महापुरुषों में थे जिनकी वाणी किसी विशेष देश या सम्प्रदाय के लिए नहीं होती, बल्कि जो समूची मनुष्यता के उत्कर्ष के लिए सत्य का मार्ग बताती हुई दीपक की भाँति जलती रहती है। अपने जीवन-काल में उन्होंने नाना भाव से मनुष्य की संकीर्णता को शिथिल करने के लिए उस पर बार-बार आघात किया था। देश का, जाति का, राष्ट्र का और धर्म का अभिमान मनुष्य को संकीर्ण-से-संकीर्णतर बनाते जा रहे हैं। उन्होंने समय रहते उन लोगों को सावधान करना चाहा था जो इन संकीर्णताओं को उत्तेजना दे रहे हैं और जो इन्हें पाल-पोस कर बढ़ाते जा रहे हैं। यद्यपि सर्वगर्वित सिंहासनों तक उनकी वाणी पहुँच नहीं सकी और उनकी जीवितावस्था में ही संसार दो-दो बार विश्व-युद्ध की भयंकर विभीषिका का शिकार हो गया, तो भी वे हार माननेवाले नहीं थे। चलते चलते भी वे कह गए थे— नागिनियाँ चारों ओर ज़हरीले निःश्वास छोड़ रही हैं, इस समय शान्ति की ललित वाणी दारुण परिहास-सी सुनाई देगी। फिर भी मैं उन लोगों को पुकार जाता हूँ जो घर घर (मनुष्य के भीतर वर्तमान) दानव से जूझने की तैयारी कर रहे हैं। इनका सारा जीवन मनुष्य को उसकी महिमा के प्रति सचेतन करने का प्रयास है, संकीर्ण राष्ट्रीयता और धार्मिकता को शिथिल करने के लिए महान संघर्ष का प्रयास है और मनुष्य में प्रेम, सौजन्य और भ्रातृभाव को उद्बुद्ध करने का प्रयत्न है।

वे मूलत कवि थ । इस ससार के स्त्री-पुरुषो के परिश्रममय जीवन ने उन्हे बहुत आकृष्ट किया था । व मनुष्य को उसकी समस्त वचना और वविध्या के साथ प्यार करते थे । बहुत पहले अपने विश्वमोहन प्रभु को सबोधन करके उन्होने एक बार कहा था— हे नाथ तुम्हारे ससार की रुलाई और हसी मुझे विचित्र भाषा म बुलाया करती हैं। तुम्हारी सृष्टि के य पुरुष और य स्त्रियाँ न जाने कितनी वेदना की डोरियो से और वासना के आकर्षणो स मुझ चारो ओर खीच रहे हैं। हे नाथ वीणा की भाति मैं अपने इस मुग्ध मन को तुम्हारी गोदी म सौंप देता हू । इसके मोह रूपी सकडो तारो पर आघात करके तुम अपना विचित्र सगीत मुखरित करो ।

मनुष्य के इसी विचित्र प्रेम द्वारा प्रभावित वह विशाल साहित्य है जिसे हम आजकल रवीन्द्र-साहित्य कहते हैं। काव्यो नाटको कहानियो गानो निबधो व्याख्यानो और प्रवचनो के माध्यम से नाना विचित्र सुरो और नाना विचित्र भावो म यह मानव प्रेम उद्वेल हो उठा है। भजन पूजन साधना आराधना-जैसे पवित्र नामो की खाल ओढ कर भी मनुष्य ने मनुष्य के अपमान का आयोजन किया है। रवीन्द्रनाथ ने बार-बार इस का विरोध किया है। ऐसे व्यवहारो से उनका हृदय जल उठता था। भाषा म उस ज्वलन्त हृदय का उद्दीप्त प्रकाश रह गया है

अरे ओ भलेमानस क्यो तू देवालय का दरवाजा बद कर के उसके कोने मे पडा हुआ है ? अरे रहने दे अपने इस भजन और पूजन को ध्यान और आराधना को । अपने मन से अधेरे म छिपा हुआ तू चुपचाप किस की पूजा कर रहा है ? जरा आख खोलकर देख तो भला देवता तेरे घर म नहीं हैं। वे वहाँ चले गए हैं जहा किसान मिटटी तोड कर हल जोत रहा है जहाँ मजदूर बारह महीने पत्थर काटकर रास्ता तयार कर रहा है। व धूप और पानी म सब के साथ हैं। उनके दोनो हाथो म धूल लगी हुई है। भलेमानस तू भी उन्ही के समान इस पवित्र

वस्त्र को फेंक कर धूल म उतर आ । रहा द अपनी ध्यान धारणा, पडी रहन दे फूलो की डलिया, फट जान दे इस शुचि-वस्त्र को लगने दे इस शरीर म धूल और बालू । ऐसा हो कि उनके साथ कर्मयोग म एक होकर तेरा पसीना चुए ।

वे कल्पना विलासी कवि नहा थे । मनुष्य की वेदना न बार-बार उनके कोमल हृदय पर आघात किया है । व दीन और दलित के कठ की वाणी को सहस्रगुण शक्ति देकर मुखरित कर सके थ , क्योंकि उनकी वेदना उन्हें व्याकुल कर देती थी । अपनी एक अत्यत प्रसिद्ध कविता म इस व्याकुल कवि ने मेघ के-से गभीर स्वर म पूछा है— कहाँ आग लगी है ? किसका शख बज उठा है जगत्-जन का जगाने के लिए ? कहा के क्रन्दन से शून्यतल ध्वनित हो रहा है ? और उन्होंने स्वय उत्तर दिया है— स्फीतकाय अपमान अक्षम पुरुषो के वक्ष स्थल से रक्त शोषण करके पान कर रहा है—शाखा मुखा स । स्वार्थ स उद्धत अविचार वेदना की खिल्लियाँ उड़ा रहा है । सकुचित भीत त्रीत दास छद्मवेश म छिप रहा है । वह जो खडा है—सिर नीचा किए हुए—मूक हो कर, उसके म्लान मुख पर केवल सकडो शताब्दियो की वदना की करुण कहानी लिखी हुई है उसके कधो पर जितना ही भार लदता जाता है ढोए चलता है मन्द गति से—जब तक कि उसमे प्राण है , इसके बाद दे जाता है अपनी सतान को—पीढी-दर-पीढी ! अदृष्ट की निन्दा नहीं करता देवताओं को याद करके नही कोसता, मनुष्य को दोष नही देता, अभिमान करना नही जानता केवल दो दाने खाट कर किसी प्रकार कष्ट क्लिष्ट प्राणो को बचाकर रख देता है । वही अन्न जब कोई छीन लेता है गर्वान्ध निष्ठुर अत्याचार जब उन प्राणो पर आघात पहुचाता है तब वह नही जानता कि किसके दरवाजे पर सविचार की आशा ले कर जा खडा होगा । दरिद्र के भगवान को एक बार पुकार कर चुपचाप मर जाता है ।

कवि ने गभीर निर्घोष म मानो वतमान युग के कवि को चेताते

हुए कहा— "हाँ, सब कुछ त्याग करना ही भाग्य में लिखा होगा—यहाँ सब आनन्द पूर्ण भाग था। स्वर्ग में आना या नहीं करना होगा। यह पुकार पर करना होगा। दूर रहे तो हो जाओ, फिर बार फिर पुकारो! जिसके भय से तुम दूर रहे हो, वह उपाधी तुम से कहीं अधिक कमजोर है। तुम जानते नहीं कि वह भाग गया होगा—जब ही तुम उसके सामने तन कर खड़े हुए कि वह राह के कंकड़ की भाँति मसल और पाँव से दुबक कर रह जायगा। देवता उससे विमुख है—साथ नहीं है उसका सहायक—वह तो केवल मन से ही बड़ी-बड़ी बातें किया करता है किन्तु मन ही मन अपनी हीनता को खूब पहचानता है! अतएव हे कवि उठ आओ! यदि तुम्हारे अन्दर केवल प्राण ही बाकी हो तो उन्हें ही साथ लेते आओ—(वही क्या कम है)—उन्हें न्यौछावर कर दो। बड़ा दुःख है—बड़ी व्यथा है—सामने कष्ट का संसार फैला हुआ है। बड़ी ही दरिद्र है—शून्य है—क्षुद्र है—अन्धकार में बद्ध है। उसे अन्न चाहिए—प्राण चाहिए—आलोक चाहिए, चाहिए मुक्त वायु, बल, स्वास्थ्य—आनन्दोज्ज्वल परमायु और चाहिए साहस से चौड़ी छाती। इसी दीनता के बीच हे कवि एक बार ले तो आओ स्वर्ग से विश्वास की छवि!

रवीन्द्रनाथ उन लोगों में नहीं थे जो संसार को माया समझने में आनन्द पाते हैं और उसको त्याग करने की सलाह देते हैं। मनुष्य इसलिए बड़ा है कि उसमें दया, माया है, प्रीति और ममता है। देवता के मन्दिर में बैठा हुआ प्रवीण भक्त जब मनुष्य की अवहेलना करता है तो वह वस्तुतः देवता को ही द्वार से लौटा देता है। रवीन्द्रनाथ ने इसे एक कथा के रूप में इस प्रकार कहा है— संसार से वैराग्य लेनेवाला एक वैरागी गंभीर रात्रि में बोल उठा, "आज मैं इष्टदेव के लिए घर छोड़ दूँगा—कौन मुझे भुलाकर यहाँ बाँध रहा है?" देवता ने कहा, "मैं!" उसने नहीं सुना। नींद में डूबे शिशु को छाती से चिपटाकर प्रेयसी शय्या के एक किनारे सो रही थी। वैरागी ने कहा, "ए माया की छलना, तू कौन है?" देवता बोल उठे, "मैं!" किन्तु किसी ने नहीं

सुना। शय्या पर से उठकर वैरागी ने पुकारा—प्रभो ! तुम कहाँ हो ? देवता ने उत्तर दिया—यहाँ ! तो भी वैरागी ने नहीं सुना। स्वप्न में माता को पास लिए सो रही थी—देवता ने कहा—'लौट आओ।' वैरागी को यह वाणी भी नहीं सुनाई दी। अंत में लंबी साँस लेकर देवता ने कहा—हाय मेरा भक्त मुझे छोड़कर कहाँ चला !

'सफलता' नाम के कविता-संग्रह में एक और आकर्षक कविता है। एक साधु स्वर्ग गए। उनकी धारणा थी कि यौवन में तो उन्होंने पुण्य किया ही नहीं है जो-कुछ साधना है, वह अंतिम जीवन में ही हुई है। पर श्रीचित्रगुप्त के यहाँ खाते में बिलकुल उलटी बात दिखाई दी। वस्तुत यौवन-काल के पुण्यों से ही हिसाब का पन्ना भरा हुआ था। साधु हैरान था कि यौवन में उसने पुण्य किया ही कहाँ ! उसने तेज होकर पूछा—देव यौवन के पृष्ठ पर पूजा के हिसाब में आपने इतना पुण्य कैसे लिख डाला ? चित्रगुप्त हँसकर बोले—'समझाना जरा कठिन है। जिसे प्रेम कहा जाता है उसी का नाम पूजा है।

रवीन्द्रनाथ भारतीय स्वाधीनता के लिए जूझनेवालों में अपने ढंग के अकेले ही महापुरुष थे। उन्होंने बार-बार याद दिलाई है कि बंधन बाहर का नहीं भीतर का है। यह जो पद-पद का भय है लोक से परलोक से राजा से मुसाहिब से मरण से दारिद्र्य से बार-बार भीत होना है यही हमारी सबसे बड़ी समस्या है। उन्होंने बार-बार अपने प्रभु से प्रार्थना की थी कि यह जो भीति का जंजाल है वह छिन्न हो जाय मनुष्य की हीनवीर्य जो अवनति है वह दूर हो जाय, भीतर का जो कठोर मनोबंधन है वह कट जाय। आज शायद उनकी इस प्रार्थना को याद करने की आवश्यकता सबसे अधिक है

इस अभागे देश से हे नाथ मंगलमय
करो तुम दूर सब भवजाल ओछे
छिन्न कर दो लोक से नृप से, मरण से, भीति का जंजाल

चूर्ण विचूर्ण कर दो दृढ़ यह पाषाण का-सा भार
दुर्बल-दीन कर्माम्बुज—विपर्यय व्यथा की मार
यह अवनति सदा की धूलितल में
यह कठिन अपमान अपना हो निमेष निमेष
यह दासत्वकी शृंखला भीतर और बाहर की
सदा डरते हुए करना प्रणति नत नत पदों की
यह चिर अपमान मानव-दर्प का,
हतगर्व मर्यादाजनित धिक्कार
लज्जाराशि बहुदाकार—
कर दो चूर्ण ठोकर मार
दो अवसर कि नभ प्रत्यूषा बला में उठाए सिर
ग्रहण कर सके निज निश्वास मुक्त बयार में
देख सके यह निस्सीम परम व्योम का आलोक—
दृप्त अशोक!

[२]

सहजभाव रवीन्द्रनाथ के काव्य का एक प्रधान स्वर है। मनुष्य मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि से देखे यही सहज भाव है। केवल अतीत के स्तूपाकार संचित जंजालों के भीतर से मनुष्य की प्रगति का मूल्य नहीं आंका जा सकता और केवल वर्तमान के अस्थिर चकाचौंध के भीतर से देखकर ही उसे समझा जा सकता है। दोनों प्रकार के लोग अपने-अपने ढंग से मनुष्य की नवीन गति देखकर कुढ़ा करते हैं। परन्तु महाकाल देवता बहुत निर्मम और कठोर हैं। न जाने कितने अतीत के व्यर्थ मोहों को रौंदते हुए वे आगे बढ़ रहे हैं और न जाने कितने वर्तमान के शक्ति मदमत्त लोगों की तनी भृकुटियों की उपेक्षा करते हुए बढ़ते जा रहे हैं। अपने एक गान में उन्होंने गाया है

ना भाई यह नहीं होने का यह रह गया—ऐसा कहकर तुमने

किसे बचा लिया ? कब तुम्हारा हुकुम तामील हुआ है ? भाई मेरे, यह खाचतान नहीं चलेगी, सिर्फ वही बचेगा जिसमें बचने की योग्यता है। जैसे जी खुशी करो, जबर्दस्ती करके रखते रहो और मारते रहो—परन्तु इतना स्मरण रखो कि जिनके शरीर में मारी व्यथाएं लगा करती हैं उनसे जितना मरा जायगा उतना ही रह जायगा उतना ही चल सकेगा। तुम्हारे पास बहुत रुपय-पैसे हैं अनेक टीम टाम हैं बहुत हाथी घोड़े हैं—बहुत सम्पत्ति है। तुम सोचते हो कि तुम जो चाहोगे वही होगा। तुम सोचते हो दुनिया को तुम्हीं नचा रहे हो। लेकिन भाई मेरे! एक दिन आँख खोल कर देखोगे कि तुम्हारे मत में जो भी नहीं होता, वह भी हो गया।'

यह अत्यन्त सहज-सी बात है परन्तु नाना प्रकार के शक्तिमदमत्त लोग इस अत्यन्त सरल बात को नहीं समझ पाते। महाकाल का रथ किसी की परवा नहीं करता, सब कुछ को कुचल कर वह आगे बढ़ जाता है। लेकिन जो लोग शक्ति से मत्त हैं वे ही नहीं जो लोग इस रहस्य को समझते हैं वे भी दुविधा में पड़े रहते हैं। सहजभाव इतना कठिन हो गया है कि मनुष्यों के इस विशाल समुदाय में उस भाव का मानव दुर्लभ हो गया है। इस सहज भाव के कारण रवीन्द्रनाथ ने अत्यन्त स्पष्ट रूप में जगत् की समस्याओं को देखा था और उनका मूल कारण खोज लिया था। एक बार उन्होंने कोरिया के एक युवक के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था— हमारा कष्ट और हमारी दीनता ही हमारी शक्ति है। उसी ने ससार भर में हमारा महासम्मिलन कराया है और उसी के बल पर भविष्य पर हमारा अधिकार होगा। जो लोग धनी हैं वे स्वार्थ की प्राचीर से अलग-अलग घिरे हुए हैं। हमारे लिए बड़े आश्वासन की बात यह है कि जो लोग सत्यरूप में मिल सकते हैं उन्हीं की जय होनी है। यूरोप में जो महायुद्ध हुआ था वह धनिकों का युद्ध था। उस युद्ध का बीज आज असंख्य होकर ससार भर में फल गया है। वह बीज मानव प्रकृति के अन्दर ही है—स्वार्थ ही विद्वेष बुद्धि की जन्म-

भूमि है। अतएव दुःखों की दासता और अज्ञान के कारण एक-दूसरे से अलग थे और घर में जो व्यक्तित्व था वह ... समन्वय में बँधा हुआ था। आज दुःख और दासता की हम मिथ्या ... और घर की ... को छिन्न-भिन्न करायेगा। संसार में आज राष्ट्रों का अज्ञान ... रहा है ... जानिया में जो दुःखों ... वह रही है उससे क्या हमें यहाँ रहा ... रहना।

एक बार कवि ने लिखा था —

वर्तमान युग का एक प्रधान लक्षण यह है कि जो लोग पीछे अंधकार में पड़े हुए थे वे अब आगे आ रहे हैं। संसार भर के नीचे समाज के तले दबे हुए थे वे ऊपर वालों के विशाल दल के भार से दबे थे। किसी ने सोचा भी नहीं था कि इस दबाव को अस्वीकार करके किसी दिन सबल होकर ये लोग निकल आएँगे। संसार के समस्त स्थूल प्रयोजनों को बोझ ढोने के काम में अपनी समस्त व्यक्तिगत स्वतंत्रता लुप्त करके ये सब लोग एकाकार होकर एक मानवपिण्ड हो उठे थे उनके भीतर कहीं ऐसा कोई भी अवकाश नहीं था जिसके भीतर से आत्मशक्ति क्रिया प्रतिक्रिया प्राण की चंचलता विस्तार कर सकती। इसलिए ये लोग केवल बाहर के धक्के से ही हिलते डुलते और स्पंदित रहे हैं कोल्हू की तरह चक्कर काटते रहे हैं चक्की की तरह पिसते रहे हैं। मानसिक परतंत्रता के कारण वे किसी कुछ सृष्टि नहीं कर सके हैं केवल उत्पन्न करते रहे हैं—चालना नहीं कर सके हैं केवल वहन करते रहे हैं। इन्हें अज्ञ बनाए रखना ही समाज की गरज थी क्योंकि ज्ञान से मनुष्य केवल बाहर की वस्तु को नहीं जानता खुद को भी जानता है। जो खुद को जानता है उसमें जब दूसरा अपनी आवश्यकता के अनुसार ठीक-ठीक माप बैठा देना चाहता है तो फिर वे आपस में टकरा जाते हैं। इस आत्मा से सहयोग की आवश्यकता पड़ने पर समझौता करना पड़ता है। राजा के लिए यह प्रजा के आकार में हो या धनी के लिए मजदूर के रूप में इससे ऊपर वालों का रास्ता ऊबड़-खाबड़ हो जाता है। काम-काज

का बंधन आसानी से नहीं सरकता। पाश्चात्य समाज में ज्ञान का आलोक परिव्याप्त हुआ है। जहां शूद्र अकेले हारकर एकाकार बन हुए थे वहां इस आलोक ने चेतनता फैला दी है और इसके साथ ही साथ उनमें स्वतन्त्रता की उपलब्धि हुई है और आत्मसम्मान का बोध जाग पड़ा है। आज अवस्था यह है कि प्रभु और दास का सम्बन्ध सहज नहीं रह गया है। देश के सनातन अज्ञान का जुआ ज्यों ही जनसाधारण के गले से उतर जायगा त्यों ही अपने आप उसका सिर ऊंचा हो जायगा।

—(एक पत्र से)

जो दूसरे को बंधन में रखता है वह स्वयं बंधन में पड़ जाता है। बंधन जब तक अज्ञानमूलक कारण होता है तब तक उससे कोई विकार नहीं पैदा होता। परन्तु ज्यों ही उसमें ज्ञान का आलोक पहुंच जाता है वह कष्ट देने लगता है। केवल बंधनप्राप्त व्यक्ति को ही कष्ट नहीं होता उसे भी होता है जो बंधनकारक है। हमारे देश में स्त्रियाँ कृत्रिम बंधन से बद्ध हैं। उनके इस बंधन ने उन्हें तो बाँध ही रखा है पुरुषों को भी कम बंधन में नहीं डाल दिया है। सब समय पुरुष बाधामुक्त होकर आगे नहीं बढ़ सकता। कवि ने एक बार इस बात को इस प्रकार स्पष्ट किया था—

समाज के संकीर्ण प्रयोजनों के निकट हमारी स्त्रियाँ कल दबाकर चलाई जानेवाली पुतलियों की तरह विधिविहित नियमों के अनुसार आवाज करती रही हैं हिलती-डुलती रही हैं। वे केवल यही बात जानती हैं कि अनुता और अशक्ति ही उनका भूषण है। माता और गृहिणी के विशेष विशेष ढांचे में ही उनका परिचय रहा है। यह बात कभी तो अस्वीकृत हुई और कभी निन्दित हुई है कि उसके मनुष्यत्व का स्वातन्त्र्य-सांचों का अतिक्रम करके भी प्रकाशित होता है। इसी प्रकार स्त्रियाँ मनुष्य जाति की एक बड़ी भारी क्षति करती आई हैं। आज ऐसा युग आया है जब स्त्रियों ने मानवत्व के पूर्ण मूल्य का दावा उपस्थित किया है। जननीय महाभागाः कह कर अब उनकी गणना नहीं होगी। सम्पूर्ण

रहे थे ठीक उसी समय सारे संसार में मानव मनुष्य का पता लगाए बद्ध पड़े रहे हैं। यहाँ आज से इस प्रान्त-प्रान्त का आदेश आया लिखा रहा है—किस प्रकार ग्रन्थ का विभाजित था। यहीं इसी ग्रन्थ को विभाजित कर रहा है। यह स्वार्थ अपने मातृभूमि का प्रचार कर रहे हैं। यहीं इतिहास की पुकार अभी है उस पुकार को सुन कर सब लोग निकल पड़े हैं। किसने सच्ची बात है किसने नहीं कौन किस बात के लिए कितना जवाबदेह है कौन नहीं—दूर रहने दो इस विचार को। किन्तु इतिहास ने पुकारा है यह सही है उस पुकार को जर्मनी ने सुना है अंग्रेजों ने सुना है फ्रांसीसियों ने सुना है बेल्जियनों ने सुना है रूसियों ने सुना है। इतिहास के भीतर से इतिहास के देवता अपनी पूजा ग्रहण करेंगे इस युद्ध में उसी महादेवता का वह उत्सव चल रहा है। यह नहीं होने का कि कोई जाति अपने राष्ट्रीय स्वार्थ को पर्जित कर के अपनी राष्ट्रीयता को सकरी कर दे—इतिहास विधाता का यही आदेश है। मनुष्य राष्ट्रीय-दानव के पदतल में इतने दिनों से नरबलि का उद्योग कर रहा है इसीलिए आज उस अपदेवता का मन्दिर तोड़ देने का हुक्म हुआ है। इतिहास विधाता कहते हैं—तुम सब को इस स्वार्थ-दानव के मन्दिर की दीवालें तोड़ देनी होंगी यह नरबलि अब नहीं चलेगी। हुक्म मिलते ही तोप के गोले आकर उस मन्दिर की दीवालों को तहस-नहस चूर्ण करने में जुट गये हैं। वीरों का दल अपने रक्त पद्य का अर्घ्य लेकर इस इतिहास विधाता की पूजा के लिए निकल पड़ा है। जो लोग आराम में थे वे आराम को धिक्कार देकर कहने लगे हैं—प्राणों से चिपके नहीं रहेंगे मनुष्य के पास प्राणों से भी बढ़कर कोई चीज है। आज तोपों के गर्जन में मानव का जय-संगीत बज उठा है माताएं रो उठी हैं स्त्री पुत्र अनाथ हो कर छाती कूट रहे हैं और इसी क्रन्दन के रूह पर उत्सव चल रहा है। जिस समय वाणिज्य-व्यवसाय चल रहा था घर में पैसा भर रहा था राज्यों और साम्राज्यों को छापकर प्रताप व्याप्त हो रहा था ठीक उसी समय पुकार आया—निकल आना होगा

मनुष्य ने जब अपने पिनाक में रुद्र-टंकार भरी है तब माँ को रोकर कहना पड़ा है जाओ। स्त्री को रात रात पति को अपने हाथों कवच पहनाना पड़ा है। समर के उस पार आज मरण-यज्ञ में यज्ञ प्राणों का महोत्सव चल रहा है।

यह रवीन्द्रनाथ की वेदना का अपना ढंग है। राष्ट्रीयता के मानव के प्रति उनके मन में बहुत ही ग्लानि भाव था। उन्होंने प्रथम महायुद्ध का कारण इस संकीर्ण राष्ट्रीय भावना को ही समझा था। वे मनुष्य की सज्जनता में विश्वास रखते थे। युद्ध से वे विचलित तो हुए थे क्योंकि उन्हें बहुत स्पष्ट ही उसकी काली छाया दिख गयी थी परन्तु उन्होंने समझा था कि युद्ध में चाहे मनुष्य को जितना कष्ट हो, जितनी भी लांछना और गर्जना सहनी पड़े युद्ध का परिणाम अन्तत मनुष्य की प्रगतिशील शक्तियों की ही विजय होगी। वही जीतेगा जिसमें प्राण की उत्कट धारा का वेग होगा। जो सड़े विचारों और मृत आचारों में चिपटे हैं वे कितने भी शक्तिशाली क्यों न हों, अपने ऊपर उन्होंने स्वेच्छा से मृत्यु की छाप डाल ली है। मनुष्यता जाग उठेगी, उसे रोकने का प्रयत्न व्यर्थ होगा। उन्हें विश्वास था कि इस विकट संघर्ष के बाद संकीर्णता की दीवारें टूटेंगी, मनुष्य में उदारता का संचार होगा। युद्ध में सर्वत्र यह अनुभव किया गया कि संकीर्णता खतरनाक है। युद्ध के बाद एक शान्ति का प्रयत्न भी किया गया पर सब व्यर्थ हुआ। क्योंकि मनुष्य ने संकीर्णता के दुख को तो समझा पर इतिहास-विधाता के इंगित को नहीं समझा। रवीन्द्रनाथ ने युद्ध के क्रन्दन और चीत्कार के भीतर इस इंगित को समझा था इसीलिए आशापूर्ण स्वर में उन्होंने घोषित किया—

आज जो संसार भर में क्रन्दन चल रहा है उसमें डर का सुर लगा है उसके भीतर से इतिहास तैयार हो रहा है। इसी में इतिहास विधाता का आनन्द है। यह क्रन्दन उन्हीं में शान्त हो रहा है। उन्हीं शान्तम् शिवम् अद्वैतम् के भीतर सत्य भर रहा है, उन्होंने अपने हाथों मनुष्य के ललाट पर जय तिलक का टीका लगाया है। वे ही विकट और विराट

के मानव स्वभाव में गड़े हैं। उनकी वाणी जिधर जाती है मृत्यु का प्रहार जिधर प्रतिध्वनित है वहां विराजमान हैं नानाम् नियम अनन्त। आज उनके हृदय में तीक्ष्ण हाथ का आशीर्वाद ग्रहण करो। इन की प्रसन्न इच्छा तभी दिखाई देती है जब वे देखते हैं कि उनकी बार सन्तान दुःख की परवाह नहीं कर रही है। उसी समय उनके प्रसन्न मन की हास्य छटा विकीर्ण होकर समस्त विश्व को सत्य-शान्ति में अभिषिक्त कर देती है।

रुद्र भयंकर रूप में भी ताण्डव करते रहे, पर उस ताण्डव में भी उनका प्रसन्न मुख नहीं दिखाई दिया। संसार के सभी पापों का प्रायश्चित्त नहीं हो सका था। अभी बहुत बाकी था। इसलिए विधाता का प्रथम इंगित नितान्त व्यर्थ नहीं गया। युद्ध का बाजार जब उतरा तो संसार जैसा था वैसा ही नहीं रहा। नवीन शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। पूर्व गगन में भयंकर मेघों के भीतर से नवीन ज्योतिरेखा का उदय हुआ। परन्तु संसार में जिस अपदेवता के मन्दिर को देखकर रवीन्द्रनाथ इतने विचलित हुए थे उसके मंदिर की सब दीवारें नहीं टूट सकीं। फिर उनके जीवन-काल में ही नया संघर्ष छिड़ गया। मृत्यु के कुछ दिन पूर्व उन्हें संसार के बलदृप्त राष्ट्रों के भयंकर लोभ और निरीह राष्ट्रों की दयनीय भीति ने विचलित कर दिया था। वे बीमार पड़े थे, बेहोश हो गये थे, पर उस बेहोशी में भी उन्हें लोभ और भय का यह दारुण दृश्य व्याकुल किये रहा। होश में आकर उन्होंने गाया--

जिस दिन मेरा चैतन्य सृष्टि की गुहा से मुक्त हुआ उस दिन उसने गर्व से महत् विस्मय की आँधी के साथ दारुण दुर्योग के बीच मुझे न जाने किस नरकाग्निवर्षी ज्वालामुखी के गिरि गह्वर के किनारे लाकर खड़ा कर दिया। मैंने देखा कि वह ज्वालामुखी तप्त धूम के रूप में मनुष्य का तीव्र अपमान उगलता हुआ फुफकार रहा है, असंगत ध्वनि से धरा को कम्पित कर रहा है और वायुमण्डल के स्तरों में कालिमा पोत रहा है। (वहां से) मैंने इस युग की आत्मघाती मत्त उन्मत्तता देखी और।

चढ़ भी देखा कि उसके समूचे शरीर में विकृति का घिनौना परिहास छा गया है। एक तरफ है स्फीत शूरता मत्तता का निर्लज्ज हुंकार और दूसरी तरफ भीरुता की दुविधा भरी पद-संचार। कृपण की छाती में चिपका हुआ संकट संबल। यह समस्त प्राणों की भ्रांति शक्ति गर्जन के बाद तत्काल ही क्षीण स्वर में अपनी निरापद नीरव नम्रता को बता देता है। जिनने श्री प्रतापशाली राष्ट्रपति * उन सभा ने मन्त्र-सभा के मण्डप तक मृगया और सुखाचरण अपने समस्त आशाओं और निर्देशों की अवराप्ति से स्वीकर पास रखा है। उधर वैतरणी नदी के उस पार से मानव प्रेतिया के दल-के-दल शून्य शून्य में उड़ आ रहे हैं और ये नर मांस के भक्षक गिद्ध अपने यशस्वी पंखों को उच्चारित करके अपवित्र कर रहे हैं।

महाकाल के सिंहासन पर बैठे हुए विचारक मुझे शक्ति दो मुझे शक्ति दो। मेरे कण्ठ में वज्र वाणी संचारित करो ताकि मैं इस शिशुघाती नारीघाती कुत्सित वीभत्सता को धिक्कार दे सकूँ—जो धिक्कार युगानुयुग इतिहास के हृदय स्पन्दन में उस समय भी स्पन्दित होता रहेगा जब कि यह रुद्धकण्ठ भयार्त शृंखलित युग चुपचाप अपनी चिता भस्म के नीचे प्रच्छन्न हो गया रहेगा।

कितनी वेदना है इस कविता में! आज दिन की तहों में कवि ने केवल सर्वाग्नि-वर्षी ज्वालामुखी को देखा, शूरता का मत्त अभियान और भीरुता का संशय भरा पद संचार ही अनुभव किया, मुखर गिद्धों की पक्ष-पंखा का कोलाहल ध्वनि ही सुनी। महाकाल के सिंहासन पर बैठे हुए विचारक से उन्होंने दग्ध कण्ठ शक्ति माँगी। ऐसी कण्ठ शक्ति जो शिशुघाती नारीघाती कुत्सित वीभत्सता को धिक्कार दे सके। उन्हें विश्वास था कि यह वीभत्स हिंसा एक दिन चिताभस्म के नीचे दब जायगा। परन्तु वे व्याकुल बहुत थे। उनकी अनेक कविताओं में इस व्याकुलता का परिचय मिलता है। जीवन भर उन्होंने आशा का सन्देश सुनाया था, क्षमा और दया का मन्त्र सिखाया था। जय हो जय हो नवीन अरुणोदय की जय हो। पूर्वी आकाश ज्योतिर्मय हो उठे (सभ्

गन्ना था) आमन्त्रित वाणी तुम आओ बग के अगम्य पर आघात करो। नाम हो नया या पुराना हो गणप या । नव जीवन प्राण आओ चिर यौवन के विजयगान तुम आओ मृत्यु को जीतनेवाली आशा आओ जड़ता का विनाश करनेवाली आशा आओ। तुम्हारा स्वागत है कन्न हूर हो बन्धन टूट हो !

इस आशावादी कवि ने मृत्यु के कुछ दिन पूर्व अपने भगवान को पुकार कर कहा --

भगवान तुमने युग-युग में बार बार दूत भेज इस निर्दय संसार में अपने दूत भेजे हैं ।

वे कह गये हैं-- क्षमा करो

कह गये हैं--प्रेम करो अन्तर से विद्वेष का विष नष्ट कर दो ।

वरणीय हैं वे स्मरणीय हैं वे

तो भी आज दुर्दिन के समय उन्हें निरर्थक नमस्कार के साथ बाहर के द्वार से ही लौटा दे रहा हूं ।

मैंने देखा है--गोपन हिंसा ने

कपट रात्रि की छाया में निस्सहाय को आघात पहुंचाया है

मैंने देखा है--प्रतीकारविहीन जबर्दस्त के अत्याचार से विचार की वाणी चुपचाप एकान्त में रो रही है

मैंने देखा है--तरुण बालक उन्मत्त होकर दौड़ पड़ा है बेकार हो पत्थर पर सिर पटक कर मर गया है

कैसी घोर यन्त्रणा है उसकी ।

आज मेरा गला रुंध गया है मेरी बांसुरी का संगीत खो गया है अमावस्या की कारा ने मेरे संसार को दुःस्वप्नों के नीचे लुप्त कर दिया है

इसलिए तो आंसू भरी आंखों से तुमसे पूछ रहा हूं--

जो लोग तुम्हारी हवा को विषाक्त बना रहे हैं

उन्हें क्या तुमने क्षमा कर दिया है ?

—र क्या तुमने प्यार किया है ।

मम-वेदना की उक्त वाणी म यह नहीं समझना चाहिए कि उन्होंने आशा छोड़ दी थी । उन्ह उन सब वस्तुओं के लिए बाद में नहीं था जो स्वयं मृत्यु की वरण करके ताप्र गति म विनाश की ओर बढ़ रही हैं । मनुष्य न वास्तविक प्राण शक्ति की शक्ति उपेक्षा की है वह विनाश के गह्वर म गिरता है । विधाता की आर स यह अभिशाप मिल चुका है । और विधाता कौन है ? स्वयं मनुष्य । इस म लोग रवीन्द्रनाथ के राजा महाकाव्य ए अन्तिम विधाता आदि शब्दों का ठीक ठीक अर्थ नहीं समझते । रवीन्द्रनाथ अत्यन्त अविच्छिन्न विचार का भी मूर्त रूप देकर सोचने के स्वभाव के रूप में अन्तर्निहित शक्ति को जो मनुष्य का माना रूपों म परिचित कर रही है मूल देवता के रूप म देखते थे । मनुष्य का सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह अन्तिम विधाता के संगीत को ठीक ठीक नहीं समझ पाता । प्राण का उपेक्षा करके जीवित रहने की आशा आत्मवंचना है । मनुष्य उस मिट्टी की ओर स विरत होता जा रहा है जो प्राणशक्ति का जीवन उत्स है और उस आसमान की ओर ताकता रहा है जो माया है कल्पना है । रवीन्द्रनाथ ने गाया था—अरे भाई मिट्टी की ओर लौट वह मिट्टी जो आँचल फैलाकर राह मुँह की ओर देख रही है जिसके वक्षस्थल को फाड़कर यह प्राणधारा उच्छ्वसित हो रही है जिसकी हँसी में फूल खिले हैं जो संगीत की टेर तान पर पुकार उठता है । वह देखो इस छोर स उस छोर तक, इस सिरान स उस सिरान तक उसकी गोद फैली हुई है । जन्म और मरण दोनों के हाथ के अलक्ष्य सूत्र म गुथे हैं । उसी के हृदय की विगलित शक्ति धारा आत्मविस्मृत हो समस्त की ओर दौड़ती है और वहाँ स प्राणों का संदेश वहन कर लाती है । तू भाई इस मिट्टी की ओर लौट आ ।

यही आशा है । बाकी सब छलना है सब माया है । मृत्यु की काली छाया को हटाना है तो प्राण की इस उच्छल धारा की ओर लौटना । मनुष्य

न जाने कब इस प्राणधारा को उसने पाया है—साहित्य में कला में वाणिज्य में राजनीति में विचारों में आचारों में सर्वत्र—वहाँ मन की धारा छाया रूप आ जाता है। प्राणधारा टूट रही है तो सारा गड़बड़ ठप्प हो जाता है—असहयोग। प्राणधारा टूट गई तो सब विघटन हो जाता है हमारे प्रयत्न वे बाज़ू। साम्राज्य बनते हैं और बिगड़ते हैं जय डंका बजता है और रुकता है विजय पताका फहराती है और झुकती है परन्तु ज्ञान है वही जो मिट्टी से सम्बद्ध है जो प्राणशक्ति से समन्वित है। अपनी एक कविता में उन्होंने इस ज्ञान को इस प्रकार कहा है—

अलस समय की धारा मे बहता हुआ मन
शून्य की ओर ताकता हुआ चला जा रहा है।
उस महाशून्य के माग मे छाया के अंकित चित्र दिखाई दे रहे है।
जमाने से दल के दल जन-समूह
सदीर्घ अतीत काल मे
जयोद्धत प्रबल गति से आये है और चले गये है।
आये हैं साम्राज्यलोभी पठान
आये हैं मुगल
उनके विजय रथ का पहिया धूल उड़ाता रहा
उनकी विजय-पताकाएं फहराती रही हैं।
सून माग की ओर देख रहा हूं
आज उनका कोई चिह्न नहीं।
युग-युग मे प्रभात और सध्या-कालीन
सर्योदय और सूर्यास्त के रंगीन प्रकाश
उस निर्मल-नीलिमा में चमकते रहते है।
दूसरी बार उसी शून्य के नीचे आये है झण्ड के झण्ड
लौहबद्ध माग से अनल निश्वासी रथ पर
प्रबल अंग्रेज

विकीर्ण कर दिया है अपना तेज
जानता हूं काल उनके रास्ते से भी निकल जायगा,
बहा देगा साम्राज्य का विजयग्रासी जाल
न जाने किस ओर।
जानता हूं ज्योतिष्क लोक के मार्ग में
उनकी पण्यवाही सेना का लेश मात्र
मिट्टी की पृथ्वी की ओर जब दृष्टि करता हूं
तो देखता हूं वहां कल-कल रव करती हुई विपुल जनता
चली जा रही है नाना पथों से नाना दलों में
युग युगान्तर से मनुष्य के नित्य प्रयोजन के कार्यों में
जीवन में, मरण में।
वे चिरकाल रस्सी खींचते हैं पतवार थामे रहते हैं
वे मैदानों में बीज बोते हैं, पका धान काटते हैं,
वे काम करते हैं
नगर में और प्रांतर में।
राज छत्र टूट पड़ता है
रण निनाद बन्द हो जाता है
विजय स्तम्भ मूढ़ की भांति अपना अर्थ भूल जाता है।
लहूलुहान हथियारों के साथ सभी लहूलुहान आंखें
शिशु-पाठ्य कहानियों में मुंह ढांप रहती हैं।
वे काम करते हैं
देश में और देशांतर में
अंग-बंग कलिंग में
समुद्र और नदियों के घाट घाट में,
पंजाब में बम्बई में गुजरात में।
उनके गुरु गर्जन और उनके गुन-गुन स्वर
दिन रात में गुंथ रहकर दिन यात्रा को मुखरित किए रहते हैं

गर्वित कर डालते हैं
जीवन के महामन्त्र की ध्वनि से।
ओओ शाखाओं के आनावरण पर
वे काम किए जा रहे हैं।

- यही मनुष्य की आत्मा है। यही वह मिट्टी में छिपा नहीं है। यही नदी प्राणधारा अबाध गति से बह रही है। रवीन्द्रनाथ ने यहीं विश्वास जमाया था यहीं उन्होंने जीवन्त सौन्दर्य देखा था। क्योंकि यही प्राणों की अनादि धारा का प्रवाह है। मिट्टी की ओर ही उन्होंने ... के अपरिपक्व तरुणों को पुकारा था क्योंकि यद्यपि वे अपरिपक्व हैं पर उनमें प्राणधारा है। उन्होंने कहा था--

चलना न चाहतीं मिट्टी की सन्तानें
पग रख मिट्टी पर (उसे अशुचि ये मानें) !
अपनी अपनी उनकी हैं बास मचानें
जिन पर अडोल आसन बाँध वे सुस्थिर।
ओ रे अशान्त ओ अपरिपक्व ओ अस्थिर!
सब तुम्हें रोकना चाहेंगे भरसक वे
सोचेंगे देख प्रकाश नया औचक वे—
यह कैसा अद्भुत काण्ड आज दिखला रे!
पाकर तेरा संघात खीझ जायेंगे
शयनीय छोड़ निज दौड़ दौड़ आयेंगे
इस अवसर पर निद्रा से जग जायेंगे—
फिर गुत्थम गुत्थी सत्य और मिथ्या की!
ओ रे प्रचण्ड ओ अपरिपक्व एकाकी।

तरुण के यौवन में उनका अखण्ड विश्वास था। मिट्टी का मोह और और उच्छल प्राणधारा—यही चिरन्तन सौन्दर्य के मूल उत्स हैं।

७

भविष्य-द्रष्टा रवीन्द्रनाथ

गत ७ अगस्त को कविवर रवीन्द्रनाथ का निर्वाण-दिवस सारे देश में मनाया गया है। भारतीय तिथियों के अनुसार यह श्राद्ध दिवस श्रावणी पूर्णिमा को पड़ना चाहिए। मुझे लगभग सोलह वर्ष तक उनका स्नेह प्राप्त करने का अवसर मिला था। इस बीच लेखक उनके पढ़ने मनन का मिला है, उनके आदेश पालन करने का है, उनके सरस विनोद और झिड़कियों का भी सुनने का अवसर प्राप्त हुआ है—इन बातों की स्मृति आज अन्तस्तल में चुभती रहती है। इतना बड़ा प्रेमी, इतना बड़ा सहृदय, ऐसा महान मानव-विश्वासी मनुष्य मैंने नहीं देखा। उनके पास इस मिनट रहने के बाद चित्त में अपूर्व आनन्द का संचार होता था। ऐसे लोग तो संसार में बहुत मिलेंगे जिनके पास जाने से मनुष्य अपने भीतर के दोषों को देखता है, अपने अन्तस्तल के असुर को प्रत्यक्ष देख कर निराश हो जाता है, पर ऐसे लोग बहुत कम मिलेंगे जो उसके भीतर के देवता को प्रत्यक्ष करा दें। रवीन्द्रनाथ ऐसे ही महापुरुष थे। वे मनुष्य के अन्तस्तल में निमग्न देवता को प्रत्यक्ष करा देते थे। उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व उनके काव्यों की भाँति ही मनोहर, उत्साहप्रद और प्रेरणादायक तत्वों से संघटित था। मैंने उन्हें अनेक विचित्र और जटिल समस्याओं के भीतर निवात निष्कम्प दीपशिखा की भाँति प्रशान्त तेज से जलते देखा है, एक बार भी उन्हें उच्च आसन से नीचे उतरते नहीं देखा, एक बार भी उन्हें अभिभूत होते नहीं देखा। उनकी बड़ी बड़ी आँखों से स्निग्ध प्रीतिधारा बरसती-सी रहती थी। मैंने उन्हें वृद्धावस्था में देखा था। फिर भी कैसी अपूर्व शोभा उनके इस वृद्ध शरीर में थी। जिस शरीर में भी नैसर्गिक विधाता ने उसे अपूर्व चारुता सम्पत्ति दे रखी थी।

समसामयिक में शान्ति का भाग ग्रहणी रहती थी। उसका वश औरों में स्नेह की धारा धार बरसाना रहता था और स्वयं ज्ञान में आलोचित अपराधों के सम्मिलित में तो अपूर्व शान्ति की सात्त्विकता का वह जाग करता था। उनके विराट भाग में औचित्य तेज और प्रेम की त्रिवेणी लहराया करती थी और उनकी प्रबुद्ध बुद्धि जगत के गहनतम समस्याओं को अनायास भेद जाया करती थी। जितना ही सोचता हूँ उतना ही लगता है रवीन्द्रनाथ का व्यक्तित्व अपूर्व था अद्भुत था। ऐसे महापुरुष के सान्निध्य को विधाता के वरदान के सिवा और क्या कहा जा सकता है और रवीन्द्रनाथ से वियुक्त होने को दुर्दैव के भयंकर अभिशाप के सिवा और क्या कहा जाय। उनके ही विषय में आज कहना है—आँखिन से जो सदा रहते तिनका यह बात कहना सत्या कर।

जिस दृष्टि की प्रमाणता सात्त्विक शक्ति की मन ऊपर चर्चा की है वह दृष्टि बड़ी भेदक थी। उसने इस युग के संपूर्ण रहस्य को इस सहज भाव से देखा था कि आश्चर्य होता है। उसमें सौन्दर्य और सत्य तक पहुँचने की अपूर्व शक्ति थी। यूरोप की सभ्यता ने हमारे देश के पिछले इतिहास को अभिभूत कर रखा था। कुछ लोग उसके प्रभाव में सहम कर गए थे, कुछ दूसरे लोग ठीक कर तो नहीं गए थे पर उसकी आग में चकरा खा कर अपने प्राचीन आचारों से चिपट गए थे। ये लोग पद पद पर हमारे देश को ब्रह्मास्त्र चलाया करते थे। रवीन्द्रनाथ ने इस सभ्यता के दोष और गुण दोनों को विवेक के साथ परखा था। इस युग में यूरोप ने निश्चय ही किसी बड़े सत्य को पाया है, न पाया होता तो इतनी उन्नति उसकी न होती। रवीन्द्रनाथ ने इस सत्य को अस्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा था कि भौतिक जगत के प्रति व्यवहार सच्चा होना चाहिए, यह आधुनिक वैज्ञानिक युग का अनुशासन है। इसे नहीं मानने से हम धोखा खाएँगे। इस सत्य को व्यवहार करने का माने है मन को संस्कार मुक्त करके विशुद्ध प्रणाली से विश्व के अन्तर्निहित भौतिक तत्त्वों का उद्धार करना। आज चार हजार वर्ष

पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं। यह बात सही है। किन्तु और भी सोचने की बात रह जाती है। यूरोप ने जिस बात में सिद्धि प्राप्त की है उस पर हमारे स्वामियों की दृष्टि केन्द्र दिनों में पड़ी है वहां पर उसका जो ऐश्वर्य है वह विश्व के सामने प्रत्यक्ष है। किन्तु जिस बात में उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हुई है वह गहराई में है इसीलिए वह बहुत दिनों तक दुनियां की आंखों में ओझल रहा है। यहां उसने विश्व की भयंकर क्षति की है और यह क्षति अब धीरे धीरे उसी की ओर लौट रही है। यूरोप के जिस लोभ ने चीन को अफीम खिलाई है वह लोभ तो चीन की मृत्यु में ही मर नहीं जाता। हम बाहर से देख सकें या नहीं यह लोभ यूरोप को प्रति दिन कलहमी के साथ माहात्य बनाता जा रहा है केवल भौतिक जगत में ही नहीं मनुष्य की दुनियां में भी निष्काम चित्त से सत्य का व्यवहार करना आत्मरक्षा का आखिरी और उत्तम उपाय है। उस सत्य व्यवहार पर से पश्चिमी जातियों की श्रद्धा प्रतिदिन कम होती जा रही है। इसी कारण उनकी लज्जा भी दूर होती जा रही है और इसीलिए उनकी समस्या भी जटिल होती जा रही है। विनाश नजदीक आता जा रहा है।

क्या मानव जगत और क्या भौतिक जगत क्या स्वदेश और क्या विदेश, सर्वत्र सत्याचरण को ही उन्नति और अभ्युदय का मूल मंत्र मानना चाहिए। कवि ने अपने जीवन में भी और अपने ग्रन्थों में भी सर्वत्र इस सत्य का जयगान किया है। इस सत्य पर दृष्टि निबद्ध रखने के कारण ही आज से बरसों पहले वे ऐसी बातें लिख गए हैं जो आज आश्चर्य जनक भविष्यवाणी जैसा लगता है। सन् १ १६ में चीन समुद्र से उन्होंने अपने एक प्रियजन को पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने चीनी मजदूरों की अपव ममनपरता का दरदर लिखा था— कम का यन्त्र मूर्ति है। एक दिन इसकी जात होगा। यदि न हो यदि वाणिज्यदानव ही मनुष्य की घर गिरस्ती आनंद आजादी आदि को लीलता चला जाए और गन्द वन्द ग्राम-सम्प्रदाय को मटिया कर डाले तथा उसी को मन्द में कर था

म ागा का आगम और स्वाथ साधन करना रह तब मर पृथ्वी रसातल पा धन जायगी। चान का यह स्ना यन्त्र शक्ति (यम करन का शक्ति) जिम न्नि स्मारे इस यग के मन नष्ट ग्रान्त का पा गाएगा अज्ञात जिस न्नि विनाश का नाच कर ागा उस न्नि मगार का कौन-सा शक्ति है जो उम बाधा म मर स्वीन्द्रनाथ का यह भविष्यवाणा सत्य सिद्ध हइ । चीन का बाधा न की ममस्त चष्टाए न्यथ र्ह है। चान की न्म वम तत्परता का म कर उन अपना न्न याग आ गया था। उन्हान नाम निवाम त्याग करत न्ना न्या था— कर मिन्या यह तस्वार भारतवष म नमन का। यहाँ ना मनष्य अपना बार जाना आ अपन आप का ही बाधा दकर बार रना है। नियमा का ऐसा जाल फला है जिमम केवल बाधा ही बाधा पाकर केवल उन्थ उलझ कर हा अपना शक्ति का अधिकांश फिजूल खच कर दना है बाका अन का काम काज म जग भी नहा पाना। विपुल जटिलता और जन्ता का ऐसा समावश पृथ्वी म और कहा नहा मिल सकता। चारा और केवल जाति के साथ जाति का विरुद्ध नियम क माथ काम का विरोध और आचार धम क साथ यार धम का द्वन्द्व फला हुआ ह। इस प्रकार उन्हान भारतीय धम की नर विधिया का तिरस्कार किया था परन्तु सत्या का मत्य यह है कि उपनिषदा क अपूर्व रस का मथन करन क बाद ही उन्हान सिद्धात सिद्ध किया था। रवीन्द्रनाथ मनष्य की जीवन धारा म पूर्ण आस्था रखत थ। व जानत थ कि ऊपर का हा हल्ला क्षणिक है। समस्त अशान्ति और आन्दोलन के नीचे मनुष्य जाति की वह सहज कमनाय धारा ही एकमात्र जावित रहती है जो मनाना म परिश्रम करती है जो जल सचय के बल पर नहा बल्कि जावित प्राणमय कम शक्ति पर भरोसा रखना है। इसीलिए व प्रबल उत्तजना क समय भी शान्त निस्तब्ध रह सक थ। उनका उस परमात्मा म विश्वास था जो विश्वास और शक्तिमद म नहीं रहता बल्कि कममय मानव जीवन के साथ नित्य चला करता है। एक कविता म उन्होंने इस भाव का बड़ सुन्दर ढग स व्यक्त किया है।

वे चिरकाल रस्सा खींचते हैं, पतवार थामे रहते हैं।

वे मैदानों में बीज बोते हैं, पका धान काटते हैं—वे काम करते हैं नगर और प्रान्तर में।

राजछत्र टूट जाता है, रणडंका बंद हो जाता है।

विजयस्तम्भ मूढ़ की भाँति अपना अर्थ भूल जाता है।

लहूलुहान हथियार और हथियारों के साथ सभी लहूलुहान आँखें शिशुपाठ्य कहानियों में मुँह ढाँपे पड़ी रहती हैं।

वे काम करते हैं—देशदेशान्तर में।
अंग बंग कलिंग में
समुद्र और नदियों के घाट घाट में
पंजाब में बंबई में गुजरात में।
उनके गुरु गर्जन और गुन गुन स्वर
दिन रात में गुँथ रह कर दिन यात्रा को मुखरित किए रहते हैं।
मन्द्रित कर डालते हैं जीवन के महामंत्र की ध्वनि को
सौ-सौ साम्राज्यों के भग्नावशेष पर
वे काम किए जा रहे हैं!

रवीन्द्रनाथ ने बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं, इनमें कविता है, उपन्यास है, कहानियाँ हैं, नाटक हैं, निबन्ध हैं, आलोचना है—साहित्य अपने व्यापक अर्थ में जो कुछ भी सूचित करता है उन सब पर इनका अबाध अधिकार था। इस ओर दुनिया की सभी समस्याओं पर उन्होंने विचार किया है। सर्वत्र उन्होंने सत्य का पक्ष लिया है। सम्राटों की विकट भृकुटियों की उन्होंने परवा नहीं की, धनकुबेरों की भरी थैलियों की ओर उन्होंने आँख उठाकर नहीं ताका। वे विशुद्ध मनुष्यता के गान गाते रहे। उन्होंने समय रहते ही संसार को विनाश की आँधी से बचने की सतर्क वाणी उच्चारित की थी पर ऊँचे सिंहासनों तक वह वाणी पहुँच नहीं सकी। मृत्यु के कुछ दिन पूर्व उनके चित्त में यह आशंका प्रबल रूप धारण करती जा रही थी कि संसार फिर एक बार विनाशकारी प्रचंड वासनाओं का

निवार हाल जा रहा है। उन्होंने व्याकुल भाव से अपने इतिहास विधाता से इसका प्रतिरोध करने लायक शक्ति मांगी थी—

इधर दानव पक्षियों के झड उडते आ रहे हैं समय अंबर में
विकट वैतरणिका के अपर तट से यन्त्रपक्षों के विकट हुंकार से करते अपावन
गगनतल को मनुज शोणित मांस के य क्षुधित श्रुदम गिद्ध !
—कि महाकाल के सिंहासनस्थित हे विचारक शक्ति दो महाको-
निरन्तर शक्ति दो दो कंठ में मेरे विकट वह वज्रवाणी कह कठिन प्रहार
इस वीभत्सता पर बाल्यघाती नारीघाती इस परम कुत्सित अनय को
कर सकूं धिक्कार जर्जर ! शक्ति दो ऐसी कि यह वाणी सदा स्पंदित
रहे लज्जातुरित इतिहास के हृदय में उस समय भी जब रुद्धकंठ
भयात्त यह शृंखलित युग चुपचाप हो प्रच्छन्न अपने चिता भस्मस्तूप में ।

निस्सन्देह रवीन्द्रनाथ का यह वज्रवाणी इतिहास के लज्जातुर स्पन्दन में सदा अंकित रहेगी और जब यह शृंखलित युग चुपचाप चिता भस्म के नीचे दब जायगा तो वह विशुद्ध मानवता अंकुरित होगा जिसके लिये उन्होंने इतना कष्ट कर गाए हैं। तथास्तु ।

१८

रवीन्द्रनाथ की विचारधारा

जब सोचकर देखता हूँ कि इस जीवन में कितने वसन्त बीत गये हैं, शरत्काल आये और गये हैं तो बड़ा आश्चर्य मालूम होता है। फिर भी जान पड़ता है कि मेरा स्मृति-पथ क्रमशः अस्पष्टतर होकर अनादि काल की ओर चला गया है और जब इस बड़े मानव राज्य के ऊपर मेघ मुक्त सुन्दर प्रभात की कड़ी धूप आकर पड़ती है उस समय मैं मानो अपनी एक माया अट्टालिका की खिड़की पर बैठ बैठ एक सुदूर विस्तृत भाव राज्य को आँख गड़ाकर देखा करता हूँ और मेरे माथे पर जो हवा आकर लगा करती है वह मानो अतीत का मार्ग अस्पष्ट मर्मर प्रवाह होकर ले आया करती है। मैं प्रकाश और हवा से इतना प्रेम करता हूँ! गेटे ने मरते समय कहा था—More light—मुझे यदि उस समय कोई इच्छा प्रकट करनी हो तो मैं कहूँगा—More light and more space!

आज चालीस वर्ष से भी अधिक व्यतीत हुए कविवर रवीन्द्रनाथ ने ऊपर की पंक्तियाँ एक पत्र में लिखी थीं। More light and more space—और भी प्रकाश और भी स्थान!—कवि की अन्तरात्मा बार-बार व्याकुल भाव से इस मंत्र को जपती रही है। सौन्दर्य का अनन्य पुजारी कवि आनन्द के अतिरेक में सदैव एक उल्लास भावना का वहन करता आया है। कवि ने बार बार लिखा है कि उनका इस पृथ्वी के साथ नया सम्बन्ध नहीं है। अनादि काल से वे पृथ्वी के साथ युक्त हैं और बराबर युक्त रहेंगे। यही कारण है कि प्रकृति की प्रत्येक सुन्दरता उन्हें उस पुरातन युग के क्रीड़ा-कौतुक का स्मरण दिलाकर उदास कर देती है। एक दूसरे पत्र में जो लगभग उसी समय लिखा गया था वे लिखते हैं—

नदी और तट दोनों के आकार प्रकार का भेद क्रमशः घटना

गया है—जा एगा उग्र के भार्व बन्ना का भांति । तब और जब उचाट म बराबर है जग भी घर बड़ नहा । प्रमाण नहा था कर आकार फिर नहीं रह गया—नाना दिशाओ म नाना रूपमय होकर चारो ओर फैल गया । यहा थाना-सा ऊचा धाम और धान्य का स्वच्छ जल तक पृथ्वी का जिन बाद याद आ जाता है—अमाम जल राशि म जब स्थल म बिखर जग गा सिर ऊपर उठाया था जल और स्थल का अधिकार तब तक निर्दिष्ट नहा हो पाया था ।

पृथ्वी को ओर देखते हो कितनी बार कवि का प्राण प्रकाण्ड उल्लास म भर कर उठा है उस इच्छा हुई है कि समस्त की कल्पना धारण करने वाली पृथ्वी को खीच कर छाती से लिपटा ले प्रभातकालीन धूप के समान अनन्त और अपार रूप म समस्त दिशाओ म व्याप्त होकर जगलो और पर्वतो म कांपते हुए पल्लव के हिल्लोल के साथ सब समय नृत्य करता रहे और प्रत्येक कुसुम-कलिका का चुम्बन करके सघन कोमल श्यामल तृण राशि का आलिंगन करके प्रत्येक तरंग पर आनंद के वेग म झूलने लगे । रात म चुपचाप निःशब्द चरणो म (चलता हुआ) विश्व-व्यापी निद्रा के रूप म वसुधरा सुन्दरी के समस्त पशु पक्षियो के नेत्रो पर अंगुलि सहला दे—प्रत्येक शयन म प्रत्येक नीड म प्रत्येक गृह म और प्रत्येक गुफा म प्रवेश करके अपने आप को बड़े आंचल की तरह फैला कर विश्व भूमि को सस्निग्ध अंधकार म ढक दे—

हे सुन्दरी वसुधर तोमार पान चेय ।
कतबार प्रान मोर उठिया छे गेय
प्रकाण्ड उल्लास भरे इच्छा करियाछे
सबले आकडि धरि ए वक्षेर काछे
समुद्र मेखला परा तव कटि देश
प्रभात रौद्रेर मतो अनन्त अशेष
व्याप्त ह ये दिके दिके अरण्य भूधर
कम्पमान पल्लवेर हिल्लोलेर

करि नृत्य सारा बेला करिया चुम्बन
प्रत्येक कुसुम कलि करि आलिंगन
सघन कोमल श्याम तृणक्षेत्र गुलि
प्रत्येक तरंग परे सारा दिन दुलि
आनन्द दोलाय । रजनी ते चुपे चुपे
निःशब्द चरणे विश्वव्यापी निद्रा रूपे
तोमार समस्त पशु पक्षीर नयने
अंगुलि बुलाये दिइ शयने शयने
नीडे-नीड़ गहे गहे गुहाय गुहाय
करिया प्रवेश वृहत अञ्चल प्राय
आपनारे विस्तारिया ढाकि विश्व भूमि
सुस्निग्ध आँधारे

यह है कवि की विराट इच्छा जो पृथ्वी को देख कर उठा करती है। कविवर रवीन्द्रनाथ की इस इच्छा का कारण है। वे अपनी वसुंधरा शीर्षक कविता में एक जगह कहते हैं—

तुम हमारी बहुत वर्षों की पृथ्वी हो, अपनी मत्तिका में मुझे मिलाकर अनन्त आकाश में अविश्रान्त चरणों से तुमने कितने ही युग युगान्तर तक असंख्य रात और दिन सूर्य मण्डल की प्रदक्षिणा की है मुझमें तुम्हारा तृण उगा है पुष्प खिला है वृक्षराजि ने पत्र-फूल फल और गंध रेणु की वर्षा की है इसीलिए आज जब कभी अनमना होकर अकेले पद्मा के तार पर बैठता हूँ मुग्ध आँखें बंद करके तुम्हारे सामने समस्त अंगों और मन में अनुभव करता हूं कि किस प्रकार तुम्हारी मिट्टी में तृणांकुर सिहर उठता है। तुम्हारे अंतर में कैसी जीवन रस धारा दिवारात्रि संचरण कर रही है कुसुम मुकुल (पुष्प-मञ्जरी) किस अंध आनन्द से पूर्ण हो फूट कर सुन्दर बंध की ओर आकुल हो उठी है। नवीन आतप के आलोक में तरु लता तृण और गुल्म मातृ स्तन पान करके थके हुए तृप्त-हृदय सुख-स्वप्न के कारण हास्य मुख शिशु

की तरह विरा गूढ़ प्रमा रग ग हर्षित हो उन्त हैं।

मैयत्र इतना ही नही जब किसी दिन परलाल की किरण पके हुए सुनहरे खतों पर पड़ता है प्रकाश में चमक कर नारियल के पत्त वायु के द्वारा काँप उठने हैं (उस समय) महा व्याकलता जग पन्ती है। जान पडता है उस दिन की यात याद आ जाती है जब मरा मन सव यापी होकर जल में स्थल म अरण्य के पल्लवा में और आकाश की नीलिमा में याप्त था। मानो सारा भुवन सकडा वार अव्यक्त आह्वान की पुकार से मुझ वला रहा ह —उस वृहत रास घर स ममर का भाँति चिरकाल के सगियो की लाख-लाख भाँति की आनद क्रीडा का परिचित स्वर मन पाता हू।

कवि का विश्वास है कि मानव आत्मा बराबर पूण से पूणतर होती जा रही है। किसी दिन वह धरित्री की मृत्तिका मे मिली हुई थी धीर धीर तण-गल्म क रूप म विकसित होकर उसन नाना जम धारण किय हैं—परन्तु यह पनजम उसे सदव पूणता की ओर अग्रसर कराता रहा है। ससार का कोई भी पदाथ उसका अपरिचित नही है इसीलिए य सभी उसकी अस्पष्ट स्मृति जगा दत हैं। आकाश मे उडते हुए पक्षी को देख कर मानव मन उसा पुरान सस्कार के कारण उडन के लिए याकल हो उठता है नदी की तरग को दखकर मनुष्य के रक्त-कण झनझना उठते हैं वह और किसी कारण से नही केवल इसलिए कि एक दिन उसन भी प्रवाह क इस आनद का अनभव किया था। चचला कविता म कवि न अपन को सबोधित करक कहा है—

अर कवि आज यह झकार मखरा भवन मखला (नदी) के अलक्षित चरणो का अवारण-सचार तुझ उतावला किये है। तेरी नाडियो में चचल की पद ध्वनि सुन रहा हू तेरा वक्ष स्थल झकृत हो उठा है। कोई नही जानता कि तर रक्त म आज समद्र की तरग नाच रही हैं और अरण्य की याकुलता काँप रही है। आज वही बात याद आ रही है—युग युगातर से स्खलित हो हो कर चुप चाप रूप से रूप म प्राण से प्राण

म मत्रमित होता हुआ चला आ रहा हूँ । आधी रात हो या प्रात काल जब जो हाथ म आया सब कुछ लुटाता आया हूँ—दान से दान को गान स गान को ।

परन्तु मनुष्य की आत्मा का यह अनवरत विराम उसकी यह अबाघ सत्ता और उसका यह अनन्त आनन्द ही एक विशाल विरह-वन्ना का कारण ह । कितन साथिया को उसने छोड दिया ह कितन प्रमाश्रु-कातर नयना ने उसक लिए क्रन्दन किया ह, कितनी ही वार यते नाहि दिव — नहा जान दूगा (या दूगा) के प्रिय विघ्न स उम मर्माहत होना पडा है इसका कुछ हिसाव नही ।

हाय र मनुष्य का हृदय किसी की ओर वार-वार लौटकर दखन का समय कहाँ है ? ना ना नहा है । तुम ता ससार के इस घाट से उस घाट तक जीवन क तीव्र स्रात म वहते जा रह हो, एक वाजार म वाझा लेन हो और दूसरे म खाली कर जाते हो—

हाय ओरे मानव हृदय बार-बार
कारो पाने फिरे चाहि वार
नाइ य समय नाइ-नाइ !!
जीवनर खरस्रोते भासिछ सवाइ
भुवनर घाटे घाट
एक हाट लओ बोझा शून्य कर दाओ अन्य हाटे !"
(शाहजहाँ)

हाय किस गभीर दुख म सारा आकाश और सारी पृथ्वी मग्न है । जितनी ही दूर चलता हू यही ममातक स्वर सुन रहा हू—नहा जान दूगी तुम्ह ।

की गम्भीर दुख मगन समस्त आकाश,
समस्त पथिवी । चलिते छि यत दूर
शुनिते छि एक मात्र मर्मान्तिक सुर
'यते आमि दिब ना तोमाय' "

पृथ्वी के एक प्रान्त से दूसर नाम गगन क दूसर प्रान्त तक नहा जाने दूगी ! की एक मात्र व्याकुल ध्वनि सुनायी दे रही है। अत्यन्त क्षुद्र तृण को भी वक्ष स्थल में लिपटा कर माता धरणी कह रही है— नहीं जान दूगी तुम्हे ! माता क मख म यही बात प्रिया क मख म वही बात और तुतलाती हुई बालिका क मुख में भी वही बात है। अर्थात इस अनन्त चराचर में स्वर्ग स लेकर मर्त्य तक वही सब से पुराना बात सब स गभीर क्रन्दन— नहा जान दूगी।

ए अनन्त चराचर स्वर्ग मर्त्य छय
सब चये पुरातन कथा सब चय
गम्भीर क्रन्दन यतें नाहि दिब

परन्तु यह सब व्यर्थ है। कबीर कहते हैं —

प्राण कहे सन काया मेरी तुम हम मिलन न होय।
तुम सम मीत बहुत हम कीना सग न लीना कोय।

इन समस्त क्रन्दनो को भुलाकर चल पडना होता है। प्रलय समुद्र की भाँति वहन वाले सृष्टि-स्रोत म फैलाय हुए व्यग्र बाहुओ और ज्वलन्त आँखो से नहीं जान दूगा (गा) की आवाज देते-देते सभी हू हू कर तीव्र वेग से विश्व-तट को आतक-रव से पूर्ण करके चले जाते हैं। सामने की तरग को पीछ की लहर बुला कर कहती है— नहीं जान दूगी-नही जान दूगी —कोई नहा सनता कोई नहा नाद करता ।

'प्रलय समुद्र वाहो सृजनर स्रोते
प्रसारित व्यग्र बाहु ज्वलन्त आखिते
दिब ना दिब ना यत डाकित
हू हू करे तीव्र वेग चले याय सब
पूर्ण करि विश्व तट अति कलरव
सम्मुख ऊर्म्मिरे डाके पश्चातर ढउ
दिब ना दिब ना येत —नाहि शुन कउ
नाहि कोनो साडा।

दुख की सीमा यही तक नही है। अखड कालस्रोत मनुष्य की पुजीकृत सञ्चय राशि को चुप चाप लेकर चल देता है पर उसे ढो ले जाने की सामर्थ्य उसमें नहा है। जिस मनुष्य ने पहली बार चावल को उबाल कर भात बनाने की विधि का आविष्कार किया था वह कहा है? उसकी सारी कृति आज भी कालस्रोत में बहती आ रही है परन्तु वह ? कसा ममन्तुद ह यह दृश्य पर कमा सुदर !

आकाश म मेघ गरज रहे हैं वर्षा घनी हो रही है। मैं अकेले किनार पर बठा हू—भरोसा नही है। राशि राशि—धान कट चुक हैं। भरी नदी तीक्ष्ण धारा और स्वरस्पर्शा हो गयी है। धान काटते-काटते वर्षा आ गयी।

एक छोटा सा खत है मैं अकेला हू। धारा ओर टटा-मटा जल खिलवाड कर रहा ह। उस पार मसी मसृण (स्याही-पुता) वृक्ष की छाया देख रहा हू। वह गाँव मघ से ढक गया है सवेरे का समय है। इस पार यह छोटा सा खेत ह और मैं अकला हूँ।

वह कौन है जो गान गाता हुआ नौका खता हुआ इस पार आ रहा ह। देखकर जान पडता है जसे उसे पहचानता हू। वह पाल ताने चला आ रहा ह। किसी तरफ नही दखता निरुपाय लहरें दोना ओर टूट जाती हैं, देख कर जान पडता ह जसे उसे पहचानता हूँ।

अजी तुम कहाँ जा रहे हो। किस विदेश म ? किनार आकर एक बार नाव लगाओ तो। जहाँ जाना चाहते हो जाना जिसे खुशी हो दे देना केवल जरा सा हँस कर किनारे आकर मेरा सोने का धान लेते जाओ।

जितना चाहो उतना नौका पर ले जाओ। और है ? और नही है (जो कुछ था) भर दिया। इतनी देर तक नदी के किनारे भूल करके जो किया था सब एक एक करके (नाव म) उठा दिया इस समय कृपा करके मुझ चढा लो।

जगह नही है जगह नही है। यह नाव छोटी है मेरे ही सोने के

धा। स यह भर गयी है। श्रावण के आकाश को घेर कर घन मध घम फिर रहे हैं (और मैं) नदी के शून्य तट पर पड़ा हुआ हूँ (भर पाम) जो कुछ था यह सोने की नाव ल्ती गयी।

ऊपर का चित्र इतना मनोहर है कि उसे पूरा करने के लिए किसी बाहरी अर्थ की आवश्यकता नहीं। यह अपने आप में ही परिपूर्ण है। कविवर रवीन्द्रनाथ किसी चित्र का अर्थ निकालने की जरूरत नहीं समझते। परन्तु यह चित्र चानी क वन तिन्नैन की भाँति केवल चमत्कारक ही नहीं है रसना को भी सरस कर सकता है। कितना उदास विरह इसकी अंतिम पंक्तियों में वर्तमान है—

> 'ठाँइ नाइ ठाँइ नाइ। छोट से तरी
> आमारि सोनार धाने गियछे भरि।
> श्रावण गगन घिरे घन मघ घूरे फिरे
> शून्य नदीर तीरे रहिनु पड़ि
> याहा छिल निये गेल सोनार तरी।

तो क्या मनुष्य जीवन दुःखमय विषादमय करुणापूर्ण जीवन है? नहीं इसी विरह के अन्दर मनुष्य सच्चे प्रेम की उपलब्धि करता है। इसी अवश्यम्भावी विरह के लिए संसार व्याकुल है। हम आगे चल कर *देखेंगे कि इस सार्वभौम विरह को कवि ने किस सरसता के साथ अभिव्यक्त* किया है।

सब को पुराना होना होगा, सब को मरना होगा! मृत्यु से बढ़ कर निश्चित सत्य की सृष्टि किस विधाता ने की है? संसार इस मृत्यु से बड़ा डरता है। परन्तु संसार यह नहीं जानता कि मृत्यु के अन्दर वस्तु को चिर सत्य कर देने की शक्ति है। जो मर गया वह चिरकाल के लिए उसी रूप में रह गया। परन्तु उसका उसी रूप में रह जाना ही क्या कम दुःखजनक है? न जाने कितने प्रेमियों के निकट हम एक विशेष रूप में ज्यों के-त्यों रह गये हैं और न जाने कितने प्रिय जन हमारे निकट ज्यों-के त्यों बने हुए हैं। संसार के सृष्टि चक्र में पड़ कर मनुष्य कहीं भी

स्थिर नहीं हो सका है हो सका है केवल मृत्यु में।

हाय रे निर्बोध मनुष्य कहाँ है तेरा घर कहाँ है तेरा स्थान ? तेरे पास केवल छोटा सा कलेजा है—भय से कम्पमान ! देख ज़रा ऊपर आँख उठा कर समस्त आकाश में छाया हुआ वह अनन्त का देश। वह (अनन्त) जब एक ओर उसे (प्रिय को) छिपाकर रख देगा तो क्या तू सन्धान पायेगा ?

हाय रे निर्बोध नर कोथा तोर आछे घर
कोथा तोर स्थान।
शुधु तोर ओइ टुक अतिशय क्षुद्र बूक
भये कम्पमान।
ऊर्ध्वे ओइ देख चेये समस्त आकाश छेये
अनन्तेर देश
से यखन एक धारे लूकाये राखिबे तारे
पाबि की उद्देश ?

असीम आकाश में ग्रह और ताराओं के असंख्य संसार को देख शायद उसी में वह अकेला राहगीर भटकता हुआ रास्ता खोज रहा है। उस दूर-दूरान्तर (देश) में अज्ञात भुवन के पार कहीं किसी जगह क्या उससे फिर मिलन होगा वह क्या फिर कुछ बातें करेगा—कोई नहीं जानता।

ओइ हेरो सीमा हारा गगने ते ग्रह तारा
असंख्य जगत
ओरि माझ परिभ्रान्त हय तो से एका पान्थ
खुजितेछे पथ।
ओइ दूर दूरान्तरे अज्ञात भुवन पर
कभु कोनोखाने
आर कि गो देखा हबे आर कि से कथा कबे
केउ नाहि जाने।

परन्तु मृत्यु का यह एक पहलू है। रवीन्द्रनाथ की अन्तर्दृष्टि वस्तु के केवल एक पहलू तक आबद्ध नहीं रहती। मृत्यु भी केवल दुःख नहीं है और नाश भी एकदम भुला देने की चीज नहीं है। जहाँ शोक नहीं जहाँ आँसू नहीं यह स्थान भी क्या रहने योग्य है? स्वर्ग से विदा कविता में जो आग दी जा रही है कवि ने दुःख के उस दूसरे पहलू को दिखाया है। यह कविता संसार के साहित्य में अपना सानी नहीं रखती। मरणान्त की प्रार्थना वाली कविता में कवि ने नाश के वास्तविक रूप की ओर संकेत किया है। कवि सूरदास एक रमणी की सुन्दरता से आकृष्ट होकर मोहग्रस्त हो गये हैं। वे अपनी लज्जा-कहानी कहकर उससे भिक्षा माँगने गये हैं। कहते हैं—

देवि आँचल सरका कर मुँह खोलो। मैं कवि सूरदास भीख माँगने आया हूँ। आशा पूरी करनी होगी। अति असहनीय अग्नि की जलन हृदय में वहन किये हूँ। कलंकरूप राहु प्रति पल मेरा जीवन ग्रास कर रहा है। तुम पवित्र हो तुम निर्मल हो तुम देवि हो तुम सती हो और मैं अति कुत्सित हूँ दीन हूँ अधम हूँ पामर हूँ पंकिल हूँ।

तुमसे अपनी लज्जा कहानी कहूँगा इसमें जरा भी लज्जा नहीं करूँगा। तुम्हारी आभा से मलीन लज्जा पलभर में विलीन हो जाती है। जैसे खड़ी हो उसी तरह खड़ी रहो आँखें नीची कर के मेरी ओर देखो। हे आनन्दमयी मुँह खोल दो आवरण की कोई जरूरत नहीं। तुम्हें भीषण मधुर (रूप में) देख रहा हूँ। तुम निकट हो तब भी बड़ी दूर हो। तुम देव रोषानल की भाँति उज्ज्वल हो बाज की तरह उद्धत।

क्या जानती हो कि मैं इन पापी आँखों को बन्द कर के तुम्हें देखा करता हूँ? मेरी विभोर वासना तुम्हारे उस मुँह की ओर दौड़ पड़ी थी। तुम क्या उस समय जान पायी थीं? तुम्हारे उस विमल हृदय-दर्पण पर क्या निःश्वास रखा के चिह्न कुछ पड़े थे? धरणी के कुहासे से जिस प्रकार आकाश की उषा का शरीर म्लान हो जाता है वह उससे वैसा ही मलिन हो गया था। सहसा बिना किसी कारण के लज्जा ने रंगीन वस्त्र

की भाति क्या तुम्ह इन लुब्ध नयना स (बचाने के लिये) ढक लेना चाहा था ? वह मरा मोह चञ्चल लालसा क्या काले भौंरे के समान तुम्हार दृष्टि पथ पर गुनगुना कर रानी फिरती थी ?

सूरदास अपनी इसी पाप क्रिया के प्रायश्चित्त के लिए तीक्ष्ण छुरी ले आय हैं और उस मोहिनी स प्राथना कर रहे हैं कि इन आखा को नष्ट कर दो— लओ विध दाओ वामना-मघन ए कालो नयन मम । क्योंकि य आखें शरीर म नहा ममस्थल म फूट उठी हैं । जिन आखा की तृषा तुम्हार लिए है व तुम्हारी ही हा । ला सूरदास अस्पष्ट चित्त स भीख माँग रहा ह उसके असीम आकाश में अधकार की स्याही पात दो । जिस असीम म—

अपार भुवन, उदार गगन श्यामल कानन तल,
वसन्त अति मुग्ध-मूरति, स्वच्छ नदार जल
विविध वरण सध्या नीरद गह तारामयी निशि
विचित्र शोभा शस्य क्षेत्र, प्रसारित दूर दिशि
सनील गगने घन तर नील अति दूर गिरि-लामा
तारि पर पारे रविर उदय कनक किरण ज्वाला
चकित तडित सघन वरषा, पूण इन्द्रधनु
शरत आकाश असीम विकास ज्योत्स्ना शुभ्र तनु

विराज रहे हैं । सूरदास उस शोभा को आज क बाद फिर नही देखेंगे । आकाश का यह समस्त सौदय कल इस अध कवि के लिए स्वप्न हो जायगा । फिर भी वे स्वच्छापूवक इस नाश को वरण करने चले हैं । क्या ?

केवल मूर्ति के स्रोत म मैं नही बह सकता । आलोक मग्न मूर्ति भुवन से मुख उठा लो । आख नष्ट होने ही मेरी सीमा चली जायगी मैं असीम और पूण हो जाऊँगा । मेरे ही अधकार म सारा आकाश और सारी पथ्वी मिल जायगी मेरा एकान्तवास उस आलोकहीन विराट हृदय म होगा और प्रलय का आसन जमाकर बारहो मास बठा रहूँगा ।

जरा रखो समाप्त नहीं रहा हूँ अच्छा तरह गाधकर जरा दखू। विश्व विरोधी यह विमल अधकार क्या निरवाल तक रहगा ? क्रमश धीर धीर क्या पवित्र मुख मधुर मूर्ति और शान्त आँखें इसमें नहीं फूट उठेंगी ? इस समय दवी की प्रतिमा की भाँति खड़ी होकर स्थिर गभीर तथा करुण नत्रो स मरे हृदय की ओर दख रही हो। सिन्ध्या के रास्त सध्या की किरणें तुम्हार ल्लाट पर आकर पड रही हैं और तुम्हारे इन घन कृष्ण कशों के ऊपर मघ का आलोक विश्राम कर रहा है यह तुम्हारा शाति रूपिणी मूर्ति अपूर्व साज म सज्जित हो मरा अनन्त रात म अग्नि रखा-सी फूट उठगी। तुम्हार चारो ओर नया ससार अपन आप स्पष्ट हो उठगा और यह सध्या की शोभा तुम्ह घर कर चिरकाल तक जागता रहगी। यह वातायन वह चपक का वृक्ष वह दूरवर्ती सरयू की रखा रात्रि और दिन स हीन इस अध हृदय म चिरकाल तक दष्टिगत होग। उस नय ससार म काल-स्रोत नहीं है परिवतन नहीं है—आज का यह दिन अनन्त होकर चिर दिन तक दखता रहगा।

तो फिर वही हो। देवि विमल न होओ इसम क्षति ही क्या है ? इस हृदयाकाश म अपनी वह दह हीन ज्योति जगी रहन दो न। वासना स मलिन आख का कलक उस पर छाया नहीं डालगा। यह अधा हृदय चिरकाल तक नीलोत्पल पाता रहगा। अपन दवता को तुमम खोजूगा तुम्हार आलोक म दखूगा और अनन्त रात्रि म जागता रहूगा।

यह है मृत्यु नाश के भीतर स चमकते हुए नित्य रूप की ज्योति। मत्यु माधुरी नामक अपनी कविता म कवि न मृत्यु क माधुय का व्यजन किया है। परन्तु इस मत्यलोक का सर्वोत्तम चित्र उतरा है स्वग स विदा कविता में। हम उसके सम्बन्ध म और कुछ न कह कर कवि के ही भावो को उद्धत कर दते हैं—पुण्य भोग समाप्त हो जान क बाद स्वग स विदा लेन समय मत्यलोक का पुराना अधिवासी कहता है—

ह महेन्द्र मर कण्ठ की मन्दार-माला म्लान हो गयी मर मलिन

ल्गट की ज्यातिमया रेखा बुझ गया—पुण्य बल क्षीण हुआ । हे दव दवीगण स्वग स मर्त्य निम्न होन का दिन है। इस दवलोक म दवता की भाँति मी लाख वष मैंन बिताये हैं । आज अन्तिम बिछुड़ के क्षण म यह आशा थी कि स्वग की आँखा म आँसू की जरा-सी रखा दख पाऊगा । शाक-हीन हृदय-हीन सुख-स्वग भूमि उदासीन भाव स एकटक दख रही है लाख-लाख वष तक उनकी आँखा क पलक नहा गिरते जब हमार जस सकड़ा लोग गृहच्युत हत ज्याति-नक्षत्र की तरह मुहूत भर म धरित्री क अन्तहीन जन्म मृत्यु प्रवाह में जा गिरते हैं उस समय स्वग का उतनी व्यथा भी नहा मालूम पड़ता जितना पीपल के वक्ष को अपन एक जीण तम पत्त के गिर जान म । यदि वह वदना वज उठती विरह की छाया रखा दिखायी देती तो स्वग की चिर-ज्योति मत्य के समान ही कामल शिशिर-बाष्प मे म्लान हो जाती —नन्दनकानन नि श्वास फक कर ममर ध्वनि कर उठता मन्दाकिनी वल्कठ मे अपने कूला पर करुण कहानी गा उठती दिन क अन्त में सध्या निजन प्रान्त के पार दिगन्त की ओर उदास भाव से चली जाती और निस्तब्ध निशीथ झिल्ली मत्रा स सनाथ की सभा म अपना वराग्य-मन्त्र सुना जाता । बीच-बीच म स्वगपुरी म नृत्य-परा मेनका के कनक-नूपुरा का ताल भग हो जाता । उवशी क स्तना म लग कर रह रह कर स्वण-बीणा मानो अन्यमनस्क भाव स कठिन पीडनका निदारुण करुण मूछना का झकार करती और दवता की अश्रु-हीन आँखा म बिना कारण जल की रखा दिखायी दती पति क पास एक ही आसन पर बठी हुइ शची सहसा चकित हो कर मानो पिपासा का पानी खोजने लगती बीच-बीच म पथ्वी स वायु प्रवाह में उसका सुदीघ नि श्वास उच्छवसित हो उठता और नदनवन म कुसुम मञ्जरियाँ झर पडती ।

हे स्वग तुम हास्य-मुख बन रहो अमृत-पान किया करो । दवगण स्वग तुम्हा लोगा का स्थान है हम है पराय लोक के बसनवाल । मत्य भूमि स्वग नहा है वह तो मातृभूमि है—इसीलिए अगर कोई उस दा

जरा रको समय नहीं रहा है अच्छी तरह शाचकर जरा देखू। विश्व विजयी यह विमल अधकार क्या निरन्तर स्थिर रहेगा ? प्रमन धीर धीर क्या पवित्र मुख मधर-मूति और आत और इनमें नहीं फूट उठेगा? इस समय देवी की प्रतिमा की भाँति खडी होकर स्थिर गभीर तथा करुण नया स मर हृदय की ओर देख रही हो। खिड़की के रास्ते सध्या की किरणें तुम्हार ललाट पर आकर पड़ रही हैं और तुम्हार इन घन कृष्ण केशों के ऊपर मघ का आलोक विश्राम कर रहा है यह तुम्हारा शाति रुपिणी मूर्ति अपूव साज मे सज्जित हो मरी अनन्त रात म अग्नि रखा-सा फूट उठगी। तुम्हार चारों ओर नया ससार अपने आप स्पष्ट हो उठगा और यह सध्या की आभा तुम्ह घर कर चिरकाल तक जागती रहगी। यह वातायन वह चप का वृक्ष वह दूरवर्ती सरयू की रखा रात्रि और दिन से हीन इस अध हृदय म चिरकाल तक दष्टिगत होग। उस नय ससार म काल-स्रोत नहीं है परिवतन नहीं है—आज का यह दिन अनत होकर चिर दिन तक देखता रहगा।

तो फिर वही हो। देवि विमख न होओ इसम क्षति ही क्या है ? इस हृदयाकाश म अपनी वह देह हीन ज्योति जगी रहन दो न। वासना स मलिन आख का कलक उस पर छाया नहीं डालेगा। यह अधा हृदय चिरकाल तक नीलोत्पल पाता रहेगा। अपने देवता को तुमम खोजगा तुम्हार आलोक म दखूगा और अनत रात्रि म जागता रहूगा।

यह है मृत्यु नाश के भीतर स चमकते हुए नित्य रूप की ज्योति। मत्य माधरी नामक अपनी कविता म कवि न मत्यु के माधुय को व्यक्त किया है। परन्तु इस मत्यलोक का सर्वोत्तम चित्र उतरा है स्वग स विदा कविता म। हम उसके सम्बध म और कुछ न कह कर कवि के ही भावो को उद्धत कर देत है—पुण्य भोग समाप्त हो जान के बाद स्वग से विदा लेत समय मत्यलोक का पुराना अधिवासी कहता है—

हे महेन्द्र मर कण्ठ की मदार माला म्लान हो गयी मर मलिन

ल्लाट की ज्योतिमयी रखा बुझ गयी—पुण्य बल क्षीण हुआ । हे दव दवीगण स्वग से मर त्रिन होन का दिन है। इस दवलोक म देवता की भाति सौ लाख वष मैंन विताय हैं । आज अंतिम विच्छद क क्षण म यह आशा थी कि स्वग की आंखा म आंसू की जरा-सा रखा देख आऊगा । शोक हीन हृदय-हीन मख-स्वग भूमि उदासीन भाव से एकटक दख रही है लाख लाख वष तक उसकी आखा क पलक नही गिरते जब हमार जसे सकडो लोग गृहच्युत हत ज्योति-नक्षत्र की तरह मुहूत भर म धरित्री क अतहीन जम मृत्यु प्रवाह म जा गिरते हैं उस समय स्वग को उतनी व्यथा भी नही मालूम पडती जितनी पीपल के वृक्ष को अपन एक जीण तम पत्त क गिर जान से । यदि वह वेदना बज उठती विरह की छाया रखा दिखायी दती तो स्वग की चिर ज्योति मत्य क समान ही कोमल शिशिर वाष्प से म्लान हो जाती —नदनकानन नि श्वास फक कर ममर ध्वनि कर उठता मदाकिनी कलकठ से अपन कूलो पर करुण कदाना गा उठती दिन के अत में सध्या निजन प्रान्त के पार दिगत की ओर उदास भाव से चली जाती और निस्तब्ध निशीथ झिल्ली मत्रा स नक्षत्रो की सभा म अपना वराग्य-सन्देश सुना जाता । बीच-बीच म स्वगपुरी म नृत्य-परा मेनका के कनक-नूपुरा का ताल भग हो जाता । उवशी के स्तना म लग कर रह रह कर स्वण-वीणा मानो अयमनस्क भाव स क्रन्दि पीडनकारी निदारुण करुण मूछना का झकार करती और देवता की अश्रु-हीन आखा म विना कारण जल की रखा दिखायी दती पति के पास एक ही आसन पर बठी हुई शची सहसा चकित हो कर मानो पिपासा का पानी खोजने लगती बीच-बीच म पृथ्वी से वायु प्रवाह में उसका सुदीघ नि श्वास उच्छवसित हो उठता और नन्दनवन म कुसुम मञ्जरियाँ झर पडती ।

हे स्वग तुम हास्य मुख बने रहो अमृत-पान किया करो । देवगण स्वग तुम्हा लोगा का स्थान है हम हैं पराय लोक के बसनेवाले । मत्य भूमि स्वग नहा है वह तो मातभूमि है—इसीलिए अगर कोई उस दा

दिन के बाद भी दो दण्ड के लिए भी द्वार पर खड़ा हो जाय तो उसकी आँखों में आँसू की जलधारा बहने लगती है। कितना भी क्षुद्र क्षीण अभागा क्यों न हो, कितना भी पाप-ग्रस्त ताप-युक्त क्यों न हो अपने स्नेह आलिंगन-पाश में जकड़ कर वह सबको बाँधना चाहती है —धूलि धूसर शरीर के स्पर्श से माता का हृदय जुड़ा जाता है। स्वर्ग में तुम्हारे पास बहुत अमृत हैं परन्तु मर्त्य में अनन्त मरणाश्रु से मिश्रित प्रेमधारा अश्रुजल से भूतलस्थ स्वर्ग गंगा को चिर श्यामल किये है।

हे अप्सरे तुम्हारी नयन-ज्योति प्रेम-वेदना से कभी म्लान न हो —मैं विनती करता हूँ। तुम किसी से प्रार्थना मत करो पृथ्वी पर किसी अत्यन्त दीन के घर में भी नदी के किनारे किसी गाँव के प्रान्त भाग में पीपल के वृक्षतले यदि मेरी प्रेयसी जन्म लेगी तो भी वह बालिका यत्नपूर्वक अपने वक्षस्थल में बचपन से ही लिए सुधा का भाण्डार सञ्चय कर रखेगी और शैशव-काल में नदी के किनारे सबेरे शिव की मूर्त्ति रचना करके वरदान में मुझे माँग लेगी। सन्ध्या होने पर जलते हुए दीपक को जल में बहा कर शंकित कम्पित वक्षस्थल से घाट पर अकेली खड़ी होकर वह एकटक देखती हुई अपनी सौभाग्य गणना करेगी। एक बार शुभ क्षण में मेरे घर में आँखें नीची किये उत्सव के वंशी रव के साथ प्रवेश करेगी। उसके चन्दन चर्चित भाल देश पर रक्तपट्टाम्बर विराजमान होगा। इसके बाद सुदिन हो या दुर्दिन सुख हो या दुःख वह गृहलक्ष्मी हाथ में कल्याण का कंकण और माँग में मंगल सिन्दूर बिन्दु धारण किये रहेगी। हे देवगण बीच-बीच में दूर स्वप्न समान यह स्वर्ग भी याद आयगा— जब किसी आधी रात को जगकर सहसा देखूँगा कि निर्मल शय्या पर चाँदनी छिटकी हुई है उसमें प्रेयसी निश्चिन्त होकर सो गयी है उसकी शिथिल बाँह लुंठित हो गयी है और लज्जा की ग्रन्थियाँ ढीली हो गयी हैं — मेरे मृदु सुहाग चुम्बन से वह चकित भाव से जाग उठेगी और गाढ़ालिंगन से मेरे वक्षस्थल में लता की भाँति लिपट जायगी। दक्षिणी हवा फूल की सुगन्धि ले आयगी और दूरस्थ शाखा पर जाग्रत कोयल गा उठेगी।

"हे दाना-हीना, आसू भरी आखोवाली दुखातुरा म्लान माता हे मेरी मातृभूमि आज बहुत दिन के बाद मेरा चित्त तेरे लिए रो उठा है। ज्यों ही विदाई के दुःख से शुष्क ये दोनो आँखें आसू से भर गयीं—त्यों ही यह स्वर्गलोक की छाया छवि अलस कल्पना के समान न जाने कहा मिल गयी। तेरा नील आकाश, तेरा प्रकाश, तेरा जनाकीर्ण लोकालय—सिन्धु तीर पर का सुदीर्घ बालुका-तट नील गिरिश्रृंग पर की शुभ्र हिम रेखा तरु श्रेणी के बीच का निःशब्द अरुणोदय शून्य नदी के पार की अवनतमुखी सध्या—एक बिन्दु आसू के जल में ये सारे दर्पण प्रतिबिंब की भाँति आ पड़े हैं।

हे हृत-पुत्रा जननी तुम्हारे अन्तिम वियोग के दिन जिस शोकाश्रुधारा ने झर कर तुम्हारे उस मातृस्तन को अभिषिक्त किया था—आज इतने दिनों के बाद वह अश्रु सूख गया है तो भी मन ही मन जानता हूं कि जब तुम्हारे घर में लौट आऊगा उसी समय तुम्हारी दोनो बाहें मुझे जकड लेंगी मंगल का शख बजेगा स्नेह की छाया में सुख-दुःखमय प्रेम से भरे ससार में अपने घर पर पुत्र कन्याओ के बीच मुझे तू चिर परिचित के समान ले लेगी। उसके दूसरे ही दिन से मेरे प्रति क्षण कापते प्राणों के साथ शकित हृदय से देवताओं की ओर ऊपर करुण दृष्टि लगा कर जागती रहेगी—तू इस बात के लिए सदा चिंतित बनी रहेगी कि जिसे पाया है उसे खो न दू।

मूल कविता का यह विकृत कंकाल है। मुझे नहीं मालूम कि मर्त्य लोक की यह महिमा शोक का यह महान रूप मातृभूमि का ऐसा सरस चित्र किसी अन्य कवि की लेखनी से निकला है या नहीं। इस कविता में कवि की अन्तर्भेदिनी दृष्टि ने मर्त्यलोक के सत्य गौरव को प्रत्यक्ष कराया है। इस पर अधिक कुछ कहना धृष्टता है। रवीन्द्रनाथ के निकट मृत्यु जीवन को पूर्ण करने का साधन है। मृत्यु मानो एक परिपूर्ण सुदूर है—उसमें विलसित हो सब कुछ सीमा के आवरण से उन्मुक्त होकर मधुर बन जाता है। प्राण धीरे से कहता है कि हे मधुर मृत्यु यह नीलाम्बर

हो क्या तुम्हारा अन्तपुर है ?—

> परान कहिछ धीर हे मृत्य मधुर
> एइ नीलाम्बर एकि तव अन्त पुर ?'

कविता स्वयं अपना भाष्य है।

इस अवस्था म कवि की मनोपा न अनुभूति का रूप धारण किया है उसकी चञ्चलता न गम्भीरता का आकार ग्रहण किया है। जीवन की इस अवस्था का आरम्भ कल्पना नामक ग्रंथ से होता है। इस अवस्था के गिह्नार पर कवि का चित्त एक विचित्र अवसाद स भर जाता है। सामन एक अज्ञात जीवन है और पीछ परित्यक्त ऐश्वय। वह व्याकुल भाव स सोचता है—

यद्यपि सध्या मन्द मन्थर गति से आ रही है सारा सगीत (उसके) इंगित पर रुक गया है यद्यपि अनन्त आकाश म कोई साथी नहा है यद्यपि शरीर म क्लान्ति उतर आयी है अन्तर म महा आशका मौन जप कर रही है दिग्दिगन्त अवगुठन से ढका हुआ है तो भी ए विहग ओ मेर विहग अभी हो ऐ अध पख बन्द न कर—

> यदि ओ सध्या आसिछ मन्द मन्थर
> सब सगीत गेछ इगिते थामिया
> यदि ओ सगी नाहि अनन्त अम्बर
> यदि ओ क्लान्ति आसिछ अग नामिया
> महा आशका जपिछ मौन अन्तर
> दिक दिगन्त अवगुठन ढाका
> तबू विहग ओरे विहग मोर
> एखनि अन्ध बन्ध करो ना पाखा।

यह ठीक है कि पूव परिचित ऐश्वय यहाँ नही है। वह ममर गुञ्जित मुखर वन नही है यह तो अजगर के गजन के साथ सागर फूल रहा है यह कुन्द-कुसुम रञ्जित कुञ्ज नहीं है (यह तो) फन के हिलोर और

क-कल्लोल के साथ हिल रहा है। अर कहाँ है वह फ-पल्लव-पुञ्जित तीर कहा है वह नीड कहाँ है वह आश्रय शाखा ! तो भी ऐ विहग आ मर विहग अभी ही ऐ अधे पख बन्द न कर !

अब भी मामन लम्बी रात पडी है अरुण सुदूर अस्ताचल पर सो रहा है विश्व जगत नि श्वास वायु सवरण करके स्तब्ध आसन पर एकात म प्रहरो की गणना कर रहा है अभी अभी अकूल अधकार को तर कर सुदूर क्षितिज पर क्षीण बाँका चाद दिखायी पडा है। अर विहग अरे ओ मरे विहग अभी ही ए अध पख बद न कर !

ऊपर आकाश म तारिकाए उगली दिखा कर इशारा करके तुम्हारी ओर ताक रही हैं नीचे गम्भीर अधीर मरण सौ-सौ तरगो म उछल कर तुम्हारी ओर दौड रहा है बहुत दूर तीर पर (न जान) व कौन हैं जो आओ आओ कह कर बुला रहे हैं उनके स्वर म करुण विनती भरी हुई है अर विहग अर ओ मर विहग अभी ही ऐ अध पख बद न कर !

अर भय नही स्नेह मोह का बन्धन नही है अर आशा नही आशा तो केवल व्यथ की छलना है अरे भाषा नही है वृथा बठकर रोना नही है अर घर नही है, वृथा फूल-सेज की रचना भी नही है। हैं केवल पख है महान् नभ प्रागण जिसम उषा की दिशा का कुछ ठिकाना नही जो निविड अधकार स अकित है अर विहग अर ओ मरे विहग अभी ही ए अध, पख बद न कर !

प्रारम्भ से ही कवि रवीन्द्रनाथ के साथ ही साधक रवीन्द्रनाथ चलते पाये जाते हैं। प्रौढावस्था म यह सम्बध और भी निविड हो उठा है। रवीन्द्रनाथ की साधना कविता हो गयी है और कविता साधना। इसीलिए वर्षा मगल कविता म कवि कहता है—

कहाँ हो तुम ऐ तरुणी पथिक ललनाओ ए तडित चकितनयना जन

एक वधू[1] कहाँ हो? ए मालविका और मालिनी आदि प्रिय परिचारिकाओ कहाँ हो तुम! ओ अभिसारिकाओ घन-नील वसन निर्गुंठिता हो कर आओ रंग स्पन्दन घन-तम में लज्जित नयन में वक्ष में तुम्हारी रसनाएँ और ... आओ एक मनस्विनी बाले! कहाँ हो तुम ए विरहिणिओ! ए अभिसारिकाओ!

और वर्षा की पहिली बूँदें संसार में गा कर आ रही हैं और बाज रहा है दादुरों का तमाल-वन के तिमिर में। ए सहचरी आओ आज की रात भूल न जाओ। बाँधो उस कदम्ब शाखा में झूलन। प्रबल स्पन्दन में कानन का पराग झर पड़ेगा। अधर से अधर का मिलना होगा अम्बर (वन) में अम्बर का और फिर वहीं होगा उस पुष्प का तुलना। सजा कदम्ब शाखा में फूलों की डोरी में बाँधो (आज का) झूलन।

यहाँ कवि आनन्दोल्लास के एक क्षण में अनन्त-सौन्दर्य को देखता है। केवल स्थान में ही अनन्त नहीं काल में भी अनन्त—

वर्षा आयी है नयी वर्षा आयी है आकाश भर कर भुवन की आशा आयी है, हवा से वन-वीथिका सन् सन् कर के हिल रही है। तरु-लतिकाएँ गीतमय हो उठी हैं। सहस्रों वर्ष के कवियों के दल ने मिल कर आकाश में और मत्त-मदिर हवा में सहस्रों युग की गीतिका ध्वनित कर दी है। वन वीथिका शत शत गीतों से मर्मरित हो उठी है।

हमारे कथन का पुष्ट प्रमाण इस पुस्तक की 'सुदूर कविता' में मिलेगा जिसका हिन्दी रूपान्तर हम 'डाकघर' नामक प्रबन्ध में दे चुके हैं। एक कविता और भी देखना पर्याप्त होगा। कविता का नाम है 'ग्रीष्मलग्न'।

शान्त वे निस्तब्ध अभी-अभी प्रभात हुआ है जाग उठी हूँ प्रभात काल के कोकिल के शब्द से। कम्पित चरणों से (चल कर) खिड़की पर आकर बैठी हूँ और शिथिल केशों में नयी माला धारण की है। ऐसे ही समय तब कि रास्ता जब धूसर हो उठा है राजमार्ग पर तरुण पथिक

---

१ मेघदूत की विरहिणी और अभिसारिकाओं से मतलब है।

छिपाया छिपा। मान के मुकुट पर उषा की आभा पड़ रही है गले में उसने भाँति भाँति मुक्ता की माला सजा ली है। कातर कण्ठ से उसने पुकारा— वह कहाँ है वह कहाँ है? —व्यग्र चरणों में हमारे ही द्वार पर उतर कर! —मैं लाज से मरा जा रहा हूँ हाय यह बात कहते नहीं बनती कि वह नय बटोही वह मैं हूँ वही तो मैं हूँ।

गोधूली बेला में तब प्रदीप नहीं जला था मैं माथे में मान की बदी पहन रही थी —हाथ में मान का दर्पण लेकर खिड़की पर अपने मन में केवरा (जूड़ा) बाँध रही थी। ऐसे ही समय सन्ध्या धूमर-पथ पर वह करुण नयनोंवाला तरुण पथिक रथ पर आया। (मुख में निकलते हुए) फेन और पसीने के कारण घोड़े व्याकुल थे। उसके वस्त्र और भूषणों में धूल भर गयी थी। कातर कंठ से उसने पुकारा—वह कहाँ है वह कहाँ है? —क्लान्त चरणों में हमारे ही द्वार पर उतर कर! —हाय मैं लाज से मरा जा रहा था यह बात तो कहने की नहीं है कि वह थका बटोही वह मैं हूँ वही तो मैं हूँ।

फागुन की रात है घर में प्रदीप जल रहा है दक्षिण हवा छाती पर लग रही है। वह मुखर (मालिका) मेना मान के पिंजरे में सो रहा है। द्वार के सामने द्वारपाल भी सो रहा है। सारा घर धूप के धुएँ से धूमिल हो गया है। अगरु की गंध से सारा शरीर व्याकुल है। मालाओं वाली मन पहना है। दूर्वा के समान उस श्यामल वक्षःस्थल पर आँचल सा ... विजन राज-पथ के उस पार देख रही हूँ खिड़की के नीचे ... रही हूँ धूल में उतर कर। अकेला बैठा तीन पहर रात गान गाता रहा है—वह उदास बटोही वह मैं हूँ वही तो मैं हूँ।

इस विकल प्रतीक्षा का भाव भाषा इतना सुकुमार है कि किसी प्रकार का विश्लेषण इसके सौन्दर्य को नष्ट कर सकता है। पर सहृदय मात्र इस कविता के आध्यात्मिक रस का अनुभव किये बिना न रहेंगे। अन्तिम पंक्तियाँ कितनी ममस्पर्शी हैं—

मयूर बसेठी परछि काँचलवनि

दूर्वा श्यामल व । आंचल टानि
रर्याति विजन राज पथ पार चाहि—
वातायन तले बसति धताय नामि—
त्रियामा यामिनी एका बस गान गाहि
हताश पथिक स य आमि सेइ आमि ।

रम प्रकार कल्पना म कवि रवीन्द्रनाथ का कविता निविड भाव म नका माधना म यक्त हाना है । यह साधना ह मन्ज प्रम का । प्रिय का विकट प्रना ा था जा स्वर ऊपर का कविता म गज उठा है आग चर रर वह अधिकाधिक स्पष्ट हाना गया है ।

कठिनाई यह ह कि रम गर गम कृत्रिम जावन क अभ्यस्त हा गय हैं कि मा ा बान मन्ज भाव म कह या मन ी नहा मकन । यहा कारण है कि मन्ज प्रम हमार ममरान म बना कठिन हा जाता है । रम सत्य वन्न म न्चिकत हैं याय का याय वन्न क लिए तक और यक्ति का अप ा रखन ह । मन्ज प्रम कहन मन्ज है पर उमका पान्न बना कठिन है । मा ा रखा खीचना रखागणित का मर म कठिन काय है । इमालिए कवि क्षणिका के आरम्भ म ही कहन है—

मच्चा बात मरर भाव स तुम मना दन का साहम नहा कर पाती । कम ममझू कि तू अविश्वाम म हँमगा या नहा ? इमालिए छल स मिथ्या मना दिया करती हू महज बान का हा मैं उल्टा करके कहता हू । भाई रमा तुम रम यथ न कर दो इमालिए अपना यथा का हा यथ कर दता ह ।

माहाग भर प्राणा का बान तुम मना दन का साहम नहा कर पाता कम ममझ कि फिर सोहाग पाऊगा या नहा ? इमालिए कठिन बात मना जाती हू । गव क बहान अपनी हा बात का हमी कर दती हू । कहा तुम्ह भी यथा न हा इमीलिए अपनी ही यथा का छिपा रखता हू ।

ऊपर की पक्तिया जिम कविता स ली गया है उसका नाम भारता ह । एमा जान पडना है कि कवि यहा अधिक साफ और दृढ रूप म अपन

नन्ज प्रम का वान वरना चाहत है। माना अब तक उद्दान जा कुछ कग है वह पयाप्त स्पष्ट नहा हुआ। मानो नवी आत्मा व पग अब अधिक तक स्थिर नहा रह सकन। व फफल कर उठना चाहत हैं। इसालिए वरना अधिक टीम व साथ प्रकट हो रहा ह।

रवि अपन आप म ही करना चाहत हैं जब बन्न रर यह गाना नाग न अर तोन ने दाना हाथा स अपना बाधा बधन। जा नन्ज तर सामन पग न आनन्द के साथ लगा न उम अपना छाना म। आज भर न लिए चर जान न जिनन असाध्य साधन है। आज गणिक मग का नन है वह कर न यह राना।

> ओर थाक थाक कादनि।
> दुइ हात दिय छिड फले दे र
> निज हात बांधा बांधनि।
> य-सहज तोर रयछ समस
> आदरे ताहार डक न र बक
> आजिकार मनो थाक थाक चुक
> य तो असाध्य साधनि।
> क्षणिक सुखर उत्सव आजि
> ओर थाक थाक कांदनि'

इस परिवर्तित अवस्था का उत्तम उदाहरण है यात्री' नामक कविता। इस कविता व साथ सानारतरी या मान की नाव कविता की तुलना कीजिए। पहल यात्री कविता का हिन्दी रूपान्तर कीजिए—

स्थान न स्थान है तुम अकर हो तुम्हार पास कवल गन और धान है। यहा न कि जग धक्कम धुक्का होगा वह कुछ ऐसा अधिक नग है। यहा न कि थोड़ा सा भारी हो जायगी मरा नाव—परन्तु इसालिए क्या तुम लौट जाओग ? स्थान ह स्थान ह।

आ जाओ आ जाओ नाव म। धूल अगर कर ना ता झाड़ दना पर म। पतनी है यह तुम्हारी चञ्चलता। आँखा के कान म चञ्चलता है और

शरीर म है यह गजल-नाऊ मप का सा यन्त्र ! अजी तुम्हारे लिए जगह हो जायगी आओ आ जाओ नाव म ।

यात्री नाना भाँति के है । व विभिन्न घाटों पर जायेंगे कोई किसी की जान पहचान का नहीं है । अजी तुम भी क्षण भर के लिए हमारी नाव पर बैठोगे ? यात्रा जब समाप्त हो जायगी तो मेरा कहा न मानोगे ? आ हो गये तो तुम भी आ जाओ यात्री नाना भाँति के है ।

कहाँ है तुम्हारा स्थान ? किस गाँव (आलय) म रहने जाओगे यह सब और धान ? यदि बोलना न चाहो तो मन कर हम क्या फल होगा जब खेवा खतम हो जायगा तो उस पार सोचेगा कहाँ है तुम्हारा स्थान ?

मान की नाव मेरे ही धान म भर गया था मेरे लिए उसमें जगह नहीं थी । वह काठ-स्रोत की निष्ठुर नौका थी । पर यहाँ दूसरा के आने का साग्रह निमन्त्रण है । यह प्रेम की नया है जिसमें जरा से धक्कम धुक्का की कोई गणना ही नहीं । आरोही अगर निरपेक्ष है तो भी कोई चिंता नहीं । वह हमारी बात का जवाब दे या न दे हम उसकी चिंता म सदर स्थिति तक आँख बिछा देंगे । प्रेम का यही माहात्म्य है ।

प्रेम की इस सहज उपासना का जो सुन्दर रूप रवीन्द्रनाथ ने अंकित किया है वह अनुपम है । उनकी साधना स्वच्छ या विरल का किसी साधना पथ म ढूँढे नहीं मिलेगी । वैष्णव आचार्यों की दस-दशाओं की भी उसम खबर नहीं है और इसाई सन्तों की भी नहीं । इस किसी किसी समालोचक ने Subjectivo indiviidu ilism या व्यक्तिगत अपरा ानुभूतिवाद कहा है । नाम चाहे जो दिया जाय इसम सन्देह नहीं कि यह कवि की आत्मानभूति ही है । कवि की इस सहज साधना का यह अच्छा परिचय उनकी एक कविता म मिलता है--

उनकी बातों से आँख चौंधिया जाती है मैं तुम्हारी बात समझता हूँ । तुम्हारा आकाश तुम्हारी हवा--यह तो सभी सीधी-सी बात है ! हृदय रूपी पुष्प अपने आप ही खिलता है और हमारा जीवन भर उठता है

दरवाजा खोल कर रखना है तो हाथ ही के पास सारी पूंजी है—

ओदर कथाय धांदा लाग
तोमार कथा आमि बूझि
तोमार आकाश तोमार वातास
इए न सबि सोजा सूजि।
हृदय कुसुम आपनि फोटे
जीवन आमार भरे उठे
दुवार खुले चय दलि
हातेर काछे सबि पूजि।

इससे अधिक साफ और सहज क्या कहा जा सकता है ? पर नाना पथों और मतों की पथ प्रदर्शकता में हमारा मन ऐसा उलझ गया है कि वह सीधी सी बात ग्रहण ही नहीं करता। कवि ने अपने एक गीत में कहा है—सीधा रास्ता तो मुझे आप ही दिखाई पड़ रहा है मैं उस ही पकड़ कर सीधा चलूंगा। ये लोग जो रास्ता दिखाने के लिए भीड़ किये हैं केवल लाज बढ़ाते हैं—

तोमार पथ आपनार आपनि दखाय
ताइ बेये मां चलबो सोजा।
यारा पथ देखा बार भिड़ करेगो
ता रा शुधू बाड़ाय लाजा।

लाज धर्मान का भी आजकल हमने चरम कृतित्व समझ लिया है। आज के दिन हम यह समझने के लिए विज्ञान और तर्कशास्त्र की सहायता चाहिए कि प्रकाश प्रकाश ही है।

इस सहज साधना की एक परिणति है इस 'अतिथि' नामक कविता में। इसका अनुवाद अन्यत्र दिया गया है।

इस ग्रंथ के आरम्भ से ही हम आध्यात्मिक साधना की बात करते आ रहे हैं। यहाँ तक आकर हम भय हो रहा है कि हमारे पाठक हमारी बातों का अत्यधिक महत्व न लेते आ रहे हों। कहीं ऐसा न हो कि वे वह

और भी गहरा आध्यात्मिक अर्थ रखकर उनसे गम्भीर प्रकाश वस्तु का अनुमान करता है। हम यहाँ तक थोड़ा फिर अपने पाठकों से नम्रता-पूर्वक निवेदन कर देते हैं कि आप उतनी ही दूर तक आध्यात्मिक साधना की ओर अग्रसर जितना दूर तक शुद्ध स्नेह रूप से काव्य का सौन्दर्य अविकृत रहता है। ऊपर की कविताएँ मत्र या मन्थन नहीं है। वे एक नाद और उससे अज्ञात सत्य की ओर इशारा भर कर देती हैं। कविता पढ़ने के बाद अगर आपकी आत्मा यह अनुभव कर रही हो कि वह उसके भाव में निमग्न हो गई, प्रिय--अज्ञात प्रिय--के लिए व्याकुल हो, उसे ऐसा लगा। जरूरत नहीं यह जानने की कि वह कौन है, तुम कौन हो? कवि स्वयं कहते हैं--

तुमको पहचानता हूँ इसीलिए मैंने लोगों में गर्व किया है, मेरे अंकित पट पर उन्होंने तुम्हें बहुत रूपों में देखा है। कितने ही लोग मेरे पास आकर पूछते हैं--अजी वह कौन है?--जानना चाहते हैं वे तुम्हारा परिचय--अजी वह कौन है? उस समय क्या कहूँ, वाणी ही नहीं निकलती। मैं केवल कहता हूँ--क्या जाने क्या जाने! तुम सुन कर हँसते हो, वे सब दोष देते हैं किस दोष पर।

तुम्हारी अनेक कहानियाँ मैंने अनेक गानों में गाया है। गोपन बातें अपने ही प्राणों में छिपा कर न रख सका। कितने ही लोगों ने मेरे पास आकर पूछा है--जो तुमने गाया है उसका क्या कुछ अर्थ भी है? उस समय क्या कहूँ, वाणी ही नहीं निकलती। मैं केवल कहता हूँ अर्थ क्या जानूँ! वे हँस कर चले जाते हैं और तुम मुसकराया करते हो।

तुम्हें जानता नहीं, पहचानता नहीं, यह बात बताओ तो भला मैं कैसे कहूँ? क्षण क्षण पर तुम झाँका करते हो और क्षण क्षण पर छिप जाया करते हो। चाँदनी भरी रात में पूर्ण चन्द्रमा में देखा है मैंने तुम्हारे मुख को विकसित। आँख की पलकों में तुम्हें देख पाया है। सहसा वक्षःस्थल हिल गया है, अकारण ही आँखें अकस्मात् उठी हैं (उस समय) मैंने चकित हो कर समझा है कि तुमने स्पर्श निक्षेप किया है।

तुम्हें प्रति क्षण मैंने गन्ध के धागे में बाँधना चाहा है। चिर काल के लिए गान के स्वर में तुम्हें रखना चाहा है। मान के छन्द का जाल बिछाया है, वहाँ में कोमल निषाद स्वर भरा है तो भी मन्द होता है कि क्या तुम पकड़े गये? कुछ काम नहीं, तुम जो चाहे करो, पकड़े न जाओ, मेरा मन रहा—पश्चात् या न पश्चात् ऐसा हो कि मेरा मन पुलकित हो उठे।

और इसके ऊपर तो कुछ जवाब नहीं चलता। सहृदया में भी इस युग अनुराग करेंगे कि वे यही कहें—

> काज नाइ तुमि या खसि ता करो,
> धरा नाइ दाओ मोर मन हरो
> चिनि वा ना चिनि प्रान उठे यन
> पुलकि।'

इस समय की कविताओं में व्याकुलता और प्रतीक्षा अधिक पायी है। उदाहरण के लिए 'सुदूर' कविता देखी जा सकती है।

रवीन्द्रनाथ उन साधकों में नहीं हैं जो बन्धन से घृणा करते हैं। सीमा को वे असीम की अभिव्यक्ति का साधन समझते हैं। उन्होंने बहुत जगह कहा है कि सीमा उस फाटक की भाँति है जिसका प्रयोजन है भीतर का द्वार का मार्ग बताना। वे कहते हैं—

वैराग्य-साधन से जो मुक्ति होती है वह मेरी नहीं है। असंख्य बन्धनों में रह कर मैं मेरा आनन्दमय मुक्ति का स्वाद लाभ करूँगा। इस वसुधा की मिट्टी का वह पात्र तुम्हारे नाना वर्णों और गन्धों वाले अमृत से बारम्बार भर दिया करेगा। प्रदीप की भाँति मेरा सारा संसार लाख-लाख बत्तियों में प्रकाश जला देगा तुम्हारी ही शिखा के रूप में तुम्हारे ही मन्दिर में—

> वैराग्य साधने मुक्ति से आमार नय
> असंख्य बन्धन माझे महानन्दमय
> लभिब मुक्तिर स्वाद। एइ वसुधार
> मृत्तिकार पात्र खानि भरि बारम्बार

तोमार अमृत ढालि दिव अविरत
नाना वर्ण गन्धमय । प्रदीपेर मतो
समस्त संसार मोर लक्ष वर्तिकाय
ज्वालाय तुलिवे आलो तोमारि शिखाय
तोमार मन्दिर माझे ।

इन्द्रिय के द्वार रुद्ध करके जो योगासन लगाना है वह मेरा नहीं है। इस रूप में गन्ध में और गान में जो कुछ आनन्द है उसके बीच में तुम्हारा आनन्द रहेगा। मेरा मोह मुक्ति के रूप में जल उठेगा, मेरा प्रेम भक्ति के रूप में फलित हो उठेगा--

इन्द्रियेर द्वार
रुद्ध करि योगासन स नहे आमार ।
या किछु आनन्द आछे दृश्य गन्ध गान ।
तोमार आनन्द रबे तार माझ खान ।
मोह मोर मुक्ति रूप उठिबे ज्वलिया
प्रेम मोर भक्ति रूप रहिबे फलिया ।

इस साहस के साथ इतने ऊँचे स्वर में शायद ही किसी कवि ने वैराग्य के विरुद्ध घोषणा की हो। बंधन की यह महिमा संभवतः प्रथम बार इस सौन्दर्य के साथ प्रकाशित हुआ है। गुरु जगदेव कहते हैं--

जो भक्ति तुम्हें छोड़कर धैर्य नहीं धारण करती, क्षण भर में ही नृत्य गीत और गान में भावोन्माद की मत्तता में विह्वल हो जाती है, वह ज्ञानहीन उद्भ्रान्त भक्ति मद की फेनोच्छल धारा नहीं चाहता नाथ! हे मेरे नाथ, एस जो भक्ति स्निग्ध अमृत से भर कर सुगन्ध करेगा इस संसार के द्वार द्वार। जो भक्ति अमृत सी समस्त जीवन में निगूढ़ गभीर भाव में विलीन होगी --सारे कर्मों को शक्ति देगी और विफल शुभ चेष्टाओं को भी आनन्द और कल्याण से सफल करेगी। सब के प्रेम में तृप्ति देगी सब के दुःख में कल्याण देगी और सब के मुख में शान्त्यान दीप्ति देगी।

इसीलिए कहते हैं कि इस द्वितीय अवस्था में प्रौढ़ रवीन्द्रनाथ की कण्

स्वर अधिक स्पष्ट और दीप्त हो गया है। क्षणिका ग्रन्थ की पगमन नामक कविता में एक बार अपने पूर्व प्रयत्नों की अस्पष्ट सफलता का उल्लेख करते हैं—

अरे दुःसाहसी! अनेक बार तो पतवार टूट चुकी है और पाल फट चुका है। समुद्र की ओर उस अकूल काले जल में तू बह गया है—रस्सियाँ टूट गयी हैं। आज क्या बल बचा है?

अनेक बार तो हाल भेडेछे
पाल गिये छे छिंडे
ओरे दुःसाहसी !
सिन्धु पाले गछिस भेसे
अकूल कालो नीर—
छिन्न रसा रसि ।
एखन कि आर आछे से बल ?

इसलिए कवि अपने को समझाते हैं — जरा श्रान्त नौका अब इस बार रुक। छोड़ दे यह आना जाना। इस वर्ष-समाप्ति की वह बेला सान्ध्य आकाश में व्याप्त हो कर बज रही है—वह सुनी जा रही है—

ए बार तव क्षान्त होये
ओरे श्रान्त तरी।
राख रे आना गोना !
वर्ष शेषेर वाँशि बाजे
सन्ध्या गगन भरि
ओइ यते छे शोना।'

किन्तु यह समझाना व्यर्थ है। कवि की आत्मा इसे सुनना नहीं चाहती। इसका यह प्रभाव नहीं फिर वह जायगा। उनका वह सर्वनाशी स्वभाव यमदूत की भाँति कर्ण (पतवार) पकड़ कर बैठा है। हाय रे मरण की लोभी स्वभाव वह आँधी-तूफान और ऊर्मि मालाओं की तरह नाचता रहेगा।

जिनव अन्ट म नाव इबना है यह यथा घाट पर बधा रहगा--

हायर मिछ प्रबोध वेवा
　　अबोध तरी मम
　　आवार याय भस ।
वण धर वस छ तार
　　यमदूतर सम
　　स्वभाव सब नग ।
माइर नगा इउयर नगा
　　छाड्ब ना को आर
　　हाय र मरण न्भी ।
घाट स कि रइब बांधा
　　अदष्ट याहार
　　आ छ नौका डूबि ।

य कविताग न्म ममय न्खिा गया था जब उन्नामवा गताना निम न्न वा तयारा म था। नवद्य प्रथम धार मन १ १ म प्रकाशित न्आ। इसा ममय बगाग विन्नी शामन का जआ अपन कन्ध म उतार फवन क लिए प्रनग्न न्याकन ना उग था। १ ०५ म उग विन्छन न्आ और न्मन सार भान्तवप का न्म सिर स उम सिर तक न्लिा न्यिा। बगाग ना प्राण दन पर उनग आया। न्म विनग गजनातिक आन्ान्न क न्नायका म अयनम थ न्मार वावि। नवन्न म व गजनानिक नायक क न्प म न्कार करन मन जान न्--

मय मम्मानित करा नय वाग वन म दून्न वनन्य भाग म टूहन कगार वन्ना म । पन्ना ना मर अगा म क्षत चिह्नित अन्कार। धन्य कर दा न्म नास का मफन्न चप्ना म और निष्फन्न प्रयास म। भाव का न्लित गान म निगान न ग्ग कर कम न्न म कर ना मय मभ्रम और स्वाधान।

न्म प्रकाग की वाग वाणा म उम यग का वायमण्न्न ध्वनित करर

रवीन्द्रनाथ ने बंगाली युवकों के उत्साह को बहुगुण प्रवृद्ध कर दिया था। परन्तु शीघ्र ही उन्होंने देखा कि यह क्षेत्र उनका नहीं है। वे इस मैदान से धीरे धीरे हट गये। 'राक गान' की रचना है सेया। श्रया को इस दृष्टि से पढ़ने पर उसमें एक विचित्र रस मिलेगा। रवीन्द्रनाथ के तत्कालीन राजनीतिक समालोचकों ने उस समय जो कुछ भी क्यों न कहा हो, यह उनका अपूर्व साहस और त्याग था। कितने आदमी हैं जो राजनीतिक क्षेत्र की महिमा को इसलिए त्याग सकें कि वह उनका स्वधर्म नहीं है? एक स्थान पर वे कहते हैं--

विदा दो, मुझे क्षमा करो मेरे भाई! मैं तो अब काम के रास्ते में नहीं रहा। जाओ ना तुम लोग दल के दल आगे होकर जयमाल्य पहन लो गले में। मैं इस समय वनच्छाया तले अलक्षित भाव में पीछे हो रहना चाहता हूं। तुम लोग मुझे पुकारना मत मेरे भाइयो!

विदाय देह क्षम आमार भाइ।
काजेर पथे आमि त आर नाइ।
एगिये सब याओ ना दले दले
जयमाल्य लओ ना तुलि गले,
आमि एखन वनच्छाया तले
अलक्षित विछिय येत चाइ
तोमरा मोर डाक दीयो ना भाइ।

बहुत दूर मैं तुम्हारे साथ-साथ आया, हम सभी साथ में साथ मिला कर चले। यहीं दो रास्तों के मोड़ पर मेरा हृदय न जाने कैसा हो रहा है। मुझे मालूम नहीं किस फूल की गंध इस अति गोपनीय व्याकुल वेदना के रूप में घूम रही है। और अधिक तो अब साथ साथ चलना नहीं होगा (सकना)!

अनेक दूरे एलेम साथ-साथे
चले छिलेम सबाइ हाते-हाते
एइखाने ते दुटि पथेर मोड़े
हिया आमार उठलो के मन करे

जानिना कोन फूलेर गंध घोर
मर्ष्टि छाड़ा व्याकुल वदना ते
आर त चला हय ना साथ-साथ।

गया था कविताओं का यानि गा परिचय इमने अन्यत्र कराया है। ...गरिमा यनी नम ...मता वर्षा अधिक ...ा करत। यहाँ नम अवस्था की ...ा प्रसिद्ध पुस्तकों म एक आध कविता का बानगी ...र पाठकों म विग ...ग। य ...ा पुस्तक है गीताञ्जलि और गानिमाल्य।

मया के आलोचना क प्रसंग म एक समालोचक न लिखा है— ...ष्वना का यौवन ...कर एक समय जिसने उसका क नृत्य का उपभोग किया है विजयिनी का विजय निनिमेष भाव म ...ला है गभार नान का आत्ममान कर क गम्भार उत्तान कर म जिसने य... घोषणा का है कि

वैराग्य साधन मक्ति से आमार नय'

...ा क...यान हृदयवा...ा कवि आज विराट क प्रम-आकषण म नवानुरागिणी किशोरी की तरह काँप रहा है। भाषा का जो दीप्ति था उच्छवास था कल्पना का जितनी उद्दामता था व सब आज कहाँ है? एकदम सादा भाषा म हृदय खोल ...न क लिए कवि आज व्याकुल है। हमारा विश्वास है कि कवि का यह व्याकुलता और साधन और निविड़ ...ा उठी है गाता ...ञ्जलि और गानिमाल्य म।

कहीं है दीपक अर कहीं है दापक! विरह अग्नि म उस जला दा जला ...ा। दापक है लिखा नहीं है—हाय र यहां क्या कपाल म लिखा था इसस ता भल मरण अच्छा। प्रदीप का जला दो विरह का आग म।

कोथाय आलो कोथाय ओ र आलो
विरहानले ज्वालो से तार ज्वालो।
रयेछ दीप ना आछ शिखा
एइ कि भाले छिल र लिखा।
इहार चेय मरण स-य भालो।

विरहानले प्रदीप खानि ज्वालो।

इस विरह की गम्भीर व्यथा से गीतांजलि भरी पड़ी है। इस विरह के बीच-बीच में प्रिय-सान्निध्य की आवाज भी स्पष्ट और स्पष्ट स्वर में सुन पड़ती है। कहते हैं— यों आड़ में छिपने से काम नहीं चलेगा। इस बार हृदय में छिप कर रहो। कोई नहीं जानेगा कोई नहीं बोलेगा—

अमन आड़ाल दिये लुकिये गेले
चलबे ना
एबार हृदय माझे लुकिये बोसो
केउ जानबे ना केउ बोलबे ना।

हम जानते हैं कि हमारा कठिन हृदय चरण रखने योग्य नहीं है।

जानि आमार कठिन हृदय
चरन राखार योग्य से नय

तथापि मेरे मित्र हिया में तुम्हारी हवा लगने पर प्राण गल नहीं पड़ेगा?

सखा तोमार हावा लागले हियाय
तबू कि प्राण गलबे ना?

'गीतान्जलि' की कविता उस स्थान पर पहुँच गयी है जहाँ मिलन और विरह में लकीर खींचना मुश्किल हो जाता है। कवि की ध्वनि मिलन और विरह दोनों के एक ही करुण स्वर में किस प्रकार बज उठी है—

वह तो नजदीक आया था तो भी मैं नहीं जगा—

सेकि पाशे एसे छिल
तबू जागिनि!

सुन्दर तुम आज प्रातःकाल अरुण वर्ण पारिजात हाथ में लेकर आये थे—

सुन्दर तुमि एसे छिले आजि प्रात
अरुण वरण पारिजात लये हाते।

हाय! कवि की अन्तरात्मा की यह साध कितनी करुणामयी है!—

तुम्हारी आग से मुँह छिपा कर पड़ी रहूँगी यह इच्छा सफल करो मेरे प्राणों में—

मुख फिरिये रबो तोमार पाने
एइ इच्छा टि सफल करो मोरे प्राणे

हमारे पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि अंग्रेजी गीताञ्जलि और बंगला गीताञ्जलि एक ही नहीं हैं। गीताञ्जलि, प्रकाशित होने तक कवि की जितनी कविताएँ प्रकाशित हुई थीं उनमें से चुनी हुई कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद ही अंग्रेजी गीताञ्जलि है।

गीताञ्जलि में जिस प्रकार के विरह मिलन का ध्यान है उसकी तृप्ति दिखायी देती है गीतिमाल्य में। वहाँ कवि कहते हैं—इस ना राह देखने में ही आनन्द है—आमार ए पथ चावा तेइ आनन्द।

जिस रात को आँधी से मेरे दरवाजे टूट गये उस समय मैंने यह तो समझा ही नहीं कि तुम आये हो मेरे घर पर। मैं क्या जानूँ कि आँधी तुम्हारी जयध्वजा है? सवेर उठकर जो देखा तो यह क्या! तुम खड़े हो हमारे घर में भरी शून्यता के ही वक्षस्थल पर—

य राते मोर दुयार गुलि भाङलो झड़
जानि नाइ तो तुमि एले मोर घर।
झड़ ये तोमार जयध्वजा ताइ कि जानि?
सकाल बेला चेये देखि दाँडिये आछ तुमि एकि!
घर भरा मोर शून्यतार बुकेर पर।

इस प्रकार की कविताओं से गीतिमाल्य भरा पड़ा है।

अजी मेरे मन का आँचल पड़ा जा रहा है उड़ा जा रहा है हाथ रोका नहीं रह सकता उसे साध कर रख नहीं सकती—

झड़े जाय उड़े जाय गो
आमार मुखेर आँचल खानि
ढाका थाके ना हाय गो
तारे राखते नारि टानि।

सचमुच वे इस अवगुण्ठन को उस तक न रख सके। प्रथम अवस्था से यहाँ तक जो प्रेम-भगवान् गूढ़ भाव में लीन हो रहा था वह गूढ़ता के पर्दे को जब नहीं सह सकता —

'बाजाओ आमार बाजाओ।
बाजाले ये सुरे प्रभात आलोरे
सेइ सुरे मोरे बाजाओ!

यह प्रकट होने की व्याकुलता है।

तुमि ये सुरे आगुन लागिये दिले मोर प्राण
से आगुन छड़िये गेल सब खाने।

इस अवस्था की चरम परिणति होती है 'गीतांजलि' में। यहाँ आकर इस विराट् हृदय रूपी समुद्र के कवित्व का ज्वार एकदम उतर गया है यहाँ इसकी भाषा में कल्पना का वह उद्दाम वेग थमा पड़ गया है। साधक रवीन्द्रनाथ स्पष्टतर हो जाते हैं। दुःख की वर्षा में आँखों का पानी ज्यों ही रुका त्यों ही वक्षःस्थल के दरवाजे पर मित्र का रथ आ रुक गया—

दुःखेर बरषाय चक्षेर जल येइ नामल।
वक्षेर दरजाय बन्धुर रथ सेइ थामल।

इतने दिनों के बाद मालूम हुआ कि जो कुछ क्रन्दन था वह किसके लिए था। धन्य है यह क्रन्दन, धन्य है यह जागरण, धन्य है—सब कुछ धन्य है—

एत दिने जाना गेल ये कांदन कांदलेम
से काहार जन्य।
धन्य ए क्रन्दन, धन्य ए जागरण,
धन्य रे धन्य!

यही स्वर समस्त 'गीतांजलि' में बजा है। यहाँ आकर कवि की सारी चेष्टा सार्थक हो गयी है। परन्तु साधना उनकी समाप्त न हुई होगी सो नहीं। कहते हैं—यहाँ तो मैं चाहता हूँ! हमारी साधना समाप्त होगी, यह चिन्ता मुझे नहीं है—

सेइ त आमि चाइ ! साधना ये शेष ह य मोर
से भावना त नाइ ।

फल के लिए भी आज नहीं कौन ढोयेगा इस विषम भार
को।

फलेर तरे नय तो लोकें ए सहज से विषम बोझा ?

(१९ ५)

मरमी रवीन्द्रनाथ

आज से चालीस वर्ष पहले की बात है। एक दिन संसार के सभ्य समाज ने आश्चर्य के साथ देखा कि पराधीन भारतवर्ष में—जिस भारतवर्ष को अब तक असभ्य देशों से बहुत ऊपर का नहीं समझा जाता था—एक ऐसा कवि पैदा हुआ है जिसका तेज अद्वितीय है। इस कवि के कुछ गीत अंग्रेजी गद्य में अनूदित होकर योरप में पहुँच पाये थे। पहले तो जो गीत वहाँ तक पहुँच पाये थे वे संख्या में इतने कम थे कि उनसे कवि की वास्तविक प्रतिभा का आभास भी उपस्थित नहीं किया जा सकता था। दूसरे उनका अनुवाद एक ऐसी भाषा में हुआ था जो मूल की भाषा से दूर का सम्बन्ध रखती है। उस पर वह अनुवाद था गद्य में! और गद्य भी कैसा—एक अंग्रेज समालोचक के शब्दों में बायें हाथ से लिखा हुआ! तो भी अंग्रेज जनता इस बायें हाथ के गद्य से अत्यधिक प्रभावित हुई। वहाँ के साहित्यिकों ने यथार्थ में ही कहा कि इस प्रकार का छन्द सम्पन्न गद्य उनके साहित्य में पहले नहीं दिखाया पड़ा है। अंग्रेजी-साहित्य कुछ साधारण नहीं है। चासिर, विश्ववरेण्य शेक्सपियर और नाटककारों की रचना का प्रसाद पाकर वह अत्यन्त समृद्ध हो गया है। उन्नीसवीं शताब्दी के जादूभरी रचनावाले कवियों—वर्डसवर्थ, शेली, कीट्स, ब्राउनिंग, [illegible] आदि—की अमर कविताएँ बीसवीं शताब्दी के सहृदयों को अब तक मुग्ध कर रही थीं। ऐसी परिस्थिति में १०३ गीतों को बाँये हाथ के गद्य में अनुवाद करने वाले कवि का इस प्रकार सम्मान पाना कुछ साधारण बात न थी। यह कवि थे रवीन्द्रनाथ और गीतों का संग्रह गीतांजलि।

नोबेल-पुरस्कार की घोषणा होते ही संसार में रवीन्द्रनाथ की चर्चा

नारा पर पर पर । यात्र क गमाायाया न त्यान्नाथ का गह स्वर स मम्मा [1] (Mystic) कवि कहा और इस मम्मी वा गम्भारता वा परा ा क लिए मध्ययुग क ईसाई मरमिया म तुलना का जान ल्या। लगा गमायाया का यह प्रवत्ति साथ म रहा है कि जब व प्राच्य दश क किसी प्रतिभा-सम्पन्न कवि को देखते हैं तो मध्ययुग क ईसाई मरमिया म उसका तुलना करन लगत हैं। प्रियसन साहब तुलसादास या सूरदास का प्रतिभा पर इतना मुग्ध हुए थ कि वह मध्ययुग क मरमा (सेंट अगस्टा उनर आर रेम्यव्वास एगवट और थामस ए-केम्पिस प्रभृति) कवियो के सदृश थ । यह स्वाभाविक भा है क्योंकि ईसाई हृदय पर इन मरमिया की अमिट छाप लगी हुई है।

तुलना तो हुई पर इसके परिणाम स्वरूप कितन हा ईसाई धर्माचाय रवीन्द्रनाथ क गीता म उस ममभाव का अस्तित्व न पा सक जिसके द्वारा मनुष्य का हृदय साध बाण की भाँति भगवान के चरणा म पहुच सक । कारण यह बताया गया कि रवीन्द्रनाथ के गीता में पाप भावना का स्मृति को जगा दनवाली बातें नहा हैं अतएव व हृदय पर सीध न पहुचकर बाना क ऊपर हा मधुर भाव से गुनगुना जाते हैं । पर योरप क ही समालोचको न इन अभियोगा को निराधार बताया था। अब रवीन्द्रनाथ के मम भाव का आलोचना म प्रवत्त होन के पूव देखा जाय कि धमाचार्यो क इन अभियोगा का कारण क्या है।

इसाई मरमी सता की साधना म इन बाना का समावश है—(१) आत्म-समपण (२) अपन में ईसामसीह की अनुभूति (३) तीन दशाए (Stages) पवित्रीकरण उज्ज्वलीकरण और योग (४)

---

[1] Mystic शब्द के अथ मे सतकवियो न मरमी या मरमिया शब्द का व्यवहार किया है। लेखक इस सूचना के लिए अध्यापक क्षितिमोहन सेन का ऋणी है। इस शब्द के तौल पर Mysticism के अथ म लेखक ने मम भाव शब्द गढ लिया है।

प्रनाव भावना (५) आत्मा की वास्तविकता में योग (६) अद्वैत बोध (७) पाप के प्रति कोमल भावना। यह बात नहीं है कि सभी ईसाई सन्तों ने इन सारी बातों को एकत्र साधना की हो। एक या एकाधिक भावनाएँ भी साधना को पूरा कर सकती हैं। इन मरमी सन्तों में सबसे प्रबल भावना है पापबोध की। यह भावना सूरदास के इस पद में मिलती जान पड़ती है—

हौं हरि सब पतितन को टीको।
और पतित सब द्यौस चारि के हौं तो जनमत ही को।

रवीन्द्रनाथ के गानों में इस बात का अस्तित्व न पाकर ईसाई धर्माचार्य अगर निराश हुए तो कोई आश्चर्य नहीं।

आलोचना को अग्रसर करने के पहले दो-एक गान जो रवीन्द्रनाथ की मरमभावना को वास्तविक रूप में उपस्थित करते हैं जान रखना नितान्त आवश्यक है। रवीन्द्रनाथ उन लोगों में नहीं हैं जो भगवान् को नरेश की भाँति देखते हैं। हिंदू धर्मशास्त्रकारों ने ईश्वर को इतने ऊँचे सिंहासन पर बिठाया है कि मनुष्य उससे डरता रहता है। हमारे मरमी सन्तों की सारी चेष्टा लगने पर भी हमारे हृदय का वह संस्कार दूर नहीं हुआ है। रवीन्द्रनाथ ने कभी ईश्वर को इतनी दूर रखा ही नहीं। न उनमें सम्भ्रम की भावना है न तटस्थता की। है क्या—एक अतिपरिचित मधुर घरेलू संबंध। ईश्वर कवि के लिए अपरिचित नहीं है बल्कि एक ऐसा प्रेमी है जो स्वयं प्रेम का भिखारी है। वह प्रार्थयितव्य अगर हो भी तो दुर्लभ तो कदापि नहीं है। कालिदास के शब्दों में मानो रवीन्द्रनाथ अपने आप में ही कह रहे हैं—

न विद्यते प्रार्थयितव्य एव ते
भविष्यति प्रार्थित दुर्लभः कथम्।

अर्थात् तेरा तो कोई प्रार्थयितव्य ही नहीं है और यदि कदाचित् कोई हो भी तो वह दुर्लभ कैसे होगा।

'सोना की बाँधी वधू' नामक कविता रवीन्द्रनाथ के इस दृष्टिकोण

को स्पष्ट कर गया है—

ए वर अजीओ (मेरे) मित्र यह जो नवीना बद्धिविहीना (लड़की) है यह तुम्हारी बालिका वधू है। तुम्हारे उदार प्रासाद में अकेली ही कितने खेल खेलती उस समय काट देती है तुम जब उसके पास आते हो तो—ए वर अजी आ (मेरे) मित्र—मानती है कि तुम (भी) केवल उसके साथ के जन हो।

ओगो वर आगो बध
ए इ-य नवीना बद्धिविहीना
ए तव बालिका बधू।
तोमार उदार प्रासादे एकेला
कत खेला तिय काटाय य बेला
तुमि काछ एले भाव तुमि तार
खेलिबार धन नाथ
ओगो वर ओगो बध।

श्रृंगार करना नहीं जानती केशपाश यदि एक ही ढंग बन जाता है तो भी मन में लाज नहीं मानती। दिन में सौ बार बना बिगाड़कर धूल के घर बनाती है और मन ही मन सोचती है कि अपना घर गिरस्ती का काम कर रही है। श्रृंगार करना नहीं जानती।

इस गुरुजन बताते हैं—वह तेरा पति है तेरा देवता है। वह भीत भाव से इस बात को सुनती है। किस प्रकार तुम्हें पूजेगी यह बात किसी तरह नहीं समझ पाती। खेल छोड़कर मन में कभी कभी सोचती है— गुरुजन जो कहते हैं प्राणपण से उसका पालन करेगी।

सोहाग सेज पर तुम्हारे बाहु पाश में बधी होने पर भी अचेतन भाव से सो जाती है। तुम्हारी बातों का कोई जवाब नहीं देती। कितने ही शुभ क्षण वृथा बीत जाते हैं। तुम जो हार उसे पहना देते हो वह न जाने किधर सोहाग सेज पर खिसककर गिर जाता है।

केवल दुर्दिन में आँधी पानी के समय—जब कि दसों दिशाएँ

स वा म ण्डर आराम नव आम म अधकाराण्टन हा आता ह—
ज्नका आँखा म निन्ा अधिक न्र तव नहा रह पाता। उमक गुडिया
न घर क्रा व व्रा पर न्र जान हैं जार म तुमम चिपटकर पन्री
रहती है न्म न्टिन वा आधा पाना म न्मरा हन्य धर धर वापा
करता ह।

न्म गाग मन हा मन न्रा करन हैं वहा न्म अजाथ बन्र म तुम्हारे
चरणा व प्रनि अपराध न हा जाय। (किन्तु) तुम मन न्रा मन हमत
न्रा गायर यन्रा दवना पमन्न करन हा। वन्र क घर व द्वार पर सह
न्रावर न जान यया परिचय पात न्रा? न्म गाग यन्रमठ हा न्रा करन है।

तुमन मन म ममना है कि पर न्रिन न्मव मार मल तुम्हार श्री
चरणा म नान न्रा जायग। यत्नपूवक तुम्हार हा निाश्च गार वन्रव लिन्रवी
पर जागती रन्रगा। न्म ममय भणभर व अन्मान वा भी यग ममयगी
नमन यन्र मन में ममन न्रिया ह।

ग वर अजा ओ (मर) मित्र तुम खूब जानन हो कि धूल में
पग न्रै यर वारा तुम्हारा ही वर ह। तुमन निजन घर म न्मा व न्रिए
न्न का आमन मजा रक्खा है। ग वर ह मर मित्र! तुमन (न्मा क
न्रिा) मान व वनार म नन्नवन वा मधु भर रक्खा न्र।

यन्र कविता न्र्वान्द्रनाथ का दृष्टिवाण स्पष्ट वर सकता ह। हम
न्रस पर वक्र टिप्पणी नहा वरेंग। अनुवान्र वरत समय हा इस पर जन्रत
म वन्रा न्यान्रा अत्याचार किया जा चुका है। वन्रल पाठका वा इतना
स्मरण वरा न्रना चान्रन न्र कि व समटिक पन्रा व साथ इस मित्रवर
व पावबय वा मार वर न्रवखें। एक दूसरा कविता और न्रा जा रही
न्र ताकि न्रस सवध वा दूसरा पन्रू भा स्पष्ट न्रा जाय—

अजा वन्रमना पान्रना (अतिथि) न्रायन्र आज आया ह आया ह।
ग वह न्रान्र न्रा अपना काम, रन्रन दा। सुन नहा रही हो तुम्हार घर व
न्ररवाज पर जान कौन एमा भरी साँझ म साकर खटखटा कर हिला
न्रान्र। अजी पग का नूपुर न बजन न्रा, चञ्चल चरणा म न्रौना नहा

अचानक ज्ञात होगा। अजी यह कौन पाहुना आज आया है आया है।
ए वधू दासी ने अपना काम छोड़ दो।

डरो ना यह हवा कभी डरो ना गाती कभी नहीं। ए वह घर विगत भय कर रखा हो। पूरा है यह भय। आँगन में ना कोई भी अंधकार रहा है आज फागुन की पूनो की आलोक प्रकाश में जग मगा रहा है।

न हो तो तुम सिर पर घूँघट सरका दो यदि भला हो तो हाथ में प्रदीप ले लो। नहीं तो यह हवा कभी नहीं ला सकती कभी नहीं।

न हो उसके साथ--उस वनवासी के साथ--बातें न करना। एक कोने में--दरवाज़े के कोने में तुम खड़ी हो रहना। यदि कोई प्रश्न करे तो मुँह नीचा करके नम्र नयनों से नीरव हो रहना। देखना कहीं हाथ के कंकण उस समय झंकार न कर उठें जब कि तुम उस सज्जन अतिथि को राह दिखाकर लिवा ला रही हो। न हो उसके साथ--उस वनवासी के साथ--बात न करना। एक कोने में--दरवाज़े के कोने में--खड़ी हो रहना।

ए वह तुम्हारा काम--घर का काम--अभी (समाप्त) नहीं हुआ? वह सुना जाने कौन अतिथि आज आया है? पूजा आरती की डाली तुमने नहीं सजायी क्या? अब भी क्या गोष्ठगृह में प्रदीप जलाना नहीं हुआ? माँग में सिंदूर बिंदु नहीं लगाया तुमने? सायंकाल का शृंगार नहीं हुआ? ए वह क्या तुम्हारा काम--घर का काम--(समाप्त) नहीं हुआ? वह सुना जाने कौन अतिथि आज आया है आज आया है।

ऊपर की दोनों कविताओं में जिस प्रेम परक संबंध का संकेत पाया जाता है वह किसी तटस्थ व्यक्ति के प्रति असंभव है। मध्ययुग के ईसाई मरमी सन्तों ने अपनी महिमामयी प्रतिभा के बल पर ईश्वर और जगत के व्यवधान को भर देने की चेष्टा की है। हिब्रू शास्त्रों के अनुसार यह संसार ईश्वर के न्याय से विमुक्त पड़ा हुआ यंत्र है अतएव पापभूमि है। इस पापभूमि पर जन्मनेवाले मनुष्य पापात्मा होते हैं। पाप का

कारण उत्पन्न नहीं है। मर्त्यलोकवासी स्वभावतः ही पापी हैं। इसलिए ईसा ईश्वर और जगत के व्यवधान को भरने के लिए अवतीर्ण हुए थे। स्वर्ग से उतरने के कारण मर्त्यलोक में सूली से उन्हें विद्ध होना पड़ा था। इसी ऋण को वह दे गये हैं अपने भक्तों के उद्धार के लिए। इसीलिए स्वर्ग की इच्छा रखनेवाले को इस ऋण को—परम दुःख को—वरण करना आवश्यक है। मध्ययुग के मरमियों में इस दुःख भावना और पापबोध का संस्कार ज्यों का त्यों रह गया था। रवीन्द्रनाथ के साथ इन मरमी सन्तों की तुलना करना दोनों के प्रति अन्याय करना है। रवीन्द्रनाथ के मित्र (प्रभु भी नहीं!) अपनी वाटिका धूल के गलियों के मेड़ को प्यार करते हैं। लोग नाहक डरा करते हैं कि वे इस प्रकार वाटिका में स्वागत-सम्वर्धना न पाकर क्रुद्ध होंगे।

इस प्रकार एक तरफ है पाप-बोध, दुःख-वरण और भय; दूसरी ओर है आनन्द, अमृत, प्रेम। इन दो दृष्टिकोणों की तुलना करना व्यर्थ है। तुलना करनेवाले को निराश होना निश्चित है।

भारतवर्ष के वैष्णव भक्त-कवि लीला के द्वारा भगवान की उपलब्धि करते हैं। भगवान शक्ति में अनन्त हैं किन्तु प्रेम के क्षेत्र में सान्त। शक्ति में वे पूर्ण हैं, प्रेम में भिखारी; शक्ति में वे उदासीन हैं, प्रेम में आसक्त। सान्त और अनन्त के इस द्वन्द्व ने भारतीय प्रेमसाहित्य को एक विचित्र रस से मधुर कर दिया है। वैष्णव भक्तों की कल्पना में श्रीकृष्ण द्वारका में पूर्ण, मथुरा में पूर्णतर और वृन्दावन में पूर्णतम हैं। द्वारका उनके ऐश्वर्य की लीला-भूमि है और वृन्दावन प्रेम की। इस वृन्दावन में वे नाचते हैं, गाते हैं, रोते हैं और सारे वृन्दावन को प्रेम में इतना भर देते हैं कि इनके अन्दर के भगवान-अंश को वैष्णव-कवि एकदम भूल जाता है। यह प्रेम-लीला भारतवर्ष की साधना में ही सम्भव हुई है।

परन्तु रवीन्द्रनाथ यहीं आकर नहीं रुके।

वैष्णव कवि दास रूप का उपासक है। वह कविता आरम्भ करने के पहले स्वीकार कर लेता है कि उसके वर्ण्य कृष्ण सत् चित् आनन्दमय

अधीर होकर जाओगी। अजी वह मेरा न जाने आज आया है आया है। ए वह दरवाजे पर आया सामने खड़ा है।

जो जो यह हवा कभी बहती न जाती कभी नहीं। ए वह घर मरे दिनों भय पर रहा हो। सूना है यह भय। आँगन में ना कहीं भी अन्धकार रहा है आज आगन की पूजा की आरती प्रदीप में जल गया रहा है।

न हो तो तुम सिर पर घूँघट सरका लो यदि मन हो तो हाथ में प्रदीप ले लो। नहीं जो यह हवा कभी नहीं हो सकती कभी नहीं।

न हो उसके साथ--उस बटोही के साथ--बातें न करना। एक कोने में--दरवाजे के कोने में तुम खड़ी हो रहना। यदि कोई प्रश्न करे तो मेरे नीचा करके नम्र नयनों से नीरव हो रहना। देखना कहीं हाथ के कंकण उस समय झंकार न कर उठें जब कि तुम उस सज्जन अतिथि को राह दिखाकर लिवा ला रही हो। न हो उसके साथ--उस बटोही के साथ--बात न करना। एक कोने में--दरवाजे के कोने में--खड़ी हो रहना।

ए वह तुम्हारा काम--घर का काम--अभी (समाप्त) नहीं हुआ? वह मेरा जाने कौन अतिथि आज आया है। पूजा आरती का थाल तुमने नहीं सजायी क्या? अब भी क्या गोष्ठगृह में प्रदीप जलाना नहीं हुआ? माँग में सिंदूर बिंदु नहीं लगाया तुमने? सायंकाल का शृंगार नहीं हुआ? ए वह क्या तुम्हारा काम--घर का काम--(समाप्त) नहीं हुआ? वह मेरा जाने कौन अतिथि आज आया है आज आया है।

ऊपर की दोनों कविताओं में जिस प्रेम परम-सम्बन्ध का संकेत पाया जाता है वह किसी तटस्थ व्यक्ति के प्रति असंभव है। मध्ययुग के ईसाई मरमी सन्तों ने अपनी महिमामयी प्रतिभा के बल पर ईश्वर और जगत के व्यवधान को भर देने की चेष्टा की है। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार यह संसार ईश्वर के हाथ से छिटक पड़ा हुआ यंत्र है अतएव पापभूमि है। इस पापभूमि पर बसनेवाले मनुष्य पापात्मा होते हैं। पाप का

थान्रा उपान्तान नहा है। मत्यलाकवासी स्वभावत हा पापा है। न्जरन ईसा, ईश्वर और जगत् क न्यवधान का भग्न क न्गि अवतीण न्ग थ। स्वग स उनरन क वारण मत्यलोक म शूग म उन्ह विद्ध हाना पन्ग था। न्मा शूग का वह रव गय ह अपन भक्ता क उद्धार क न्गि। इमा लिग स्वग की इन्छा रखनवाले की इम शूग का--परम न्ग का-- वरण करना आवश्यक है। मध्ययुग क मरमिया म न्स न्ग भावना और पापबाध का मस्कार ज्या का त्या रन गया था। रवीन्द्रनाग क माथ न्न मरमी मता की तुन्ना कन्ना दोना क प्रति अन्याय कन्ना ह। रवीन्नाथ क मित्र (प्रभु भा नही !) अपना बान्विा वन्ू क गन्या क खन का प्यार करत ह। न्गेग नाहक डरा करत ह कि वन न्म अनाय बाधा स स्वागन सवधना न पाकर क्रुद्ध हाग।

न्म प्रकार एक तरफ है पाप बोध दुःख वरण और भय दूसरा आर है आनन्द अमत प्रम। इन न्ो दृष्टिकोणा का तुन्ना कन्ना न्यथ है। तुन्ना करनवान्न का निराश होना निश्चित ह।

भारतवष क वष्णव भक्त कवि न्गीला क द्वारा भगवान का उपन्गि ध करत हैं। भगवान शक्ति म अनन्त हैं किन्तु प्रम क क्षत्र म सान्त शक्ति म वन पूण है प्रम म भिक्षुक शक्ति म वह उन्गमान ह प्रम म आमक्त। सान्त और अनन्त क न्स द्वन्द्व न भारतीय प्रमकाव्य का बन्न विचित्र न्म स मधर कर न्िया ह। वष्णव भक्ता का कल्पना म श्रीकृष्ण द्वारका म पूण मथुरा म पूणतर और वृन्दावन म पूणतम ह। द्वारका उनक एश्वय का न्गीला भूमि है और वृन्दावन प्रम की। इस वृन्दावन म वन नाचत हैं गात हैं रान्त है और सार वृन्दावन का प्रम स न्तना भर न्ते ह कि उनक अन्दर क भगवान अश का वष्णव कवि एकदम भूल जाता है। यह प्रम न्गीला भारतवष की साधना म हा सभव हुई ह।

परन्तु रवीन्द्रनाथ यहीं आकर नहा रुक।

वष्णव कवि ठाम रूप का उपासक है। वह कविता आरम्भ करन क पन्न स्वीकार कर न्ता है कि उमक वण्य कृष्ण मन चित आनन्दमय

अभ्यागत ज्यों आओगे। अजी कौन सुना पाहुना आज आया है आया है।
वह घर का अभी काम हुआ न।

जो अब पर हुआ नहीं। ना सका कभी नहीं। वह पर सब शिंगार अब कर ना हो। सूना है घर सब। आंगन में तो कहीं भी अन्धकार है आज गगन का पूजा अभी प्रदीप में जग मगा रहा है।

न हो तो तुम सिर पर घूंघट सरका ना। यदि पूछा हो तो हाथ से प्रणाम करना। नहीं जो यह हुआ कभी नहीं हो सकता कभी नहीं।

न हो उसके साथ--उस कहीं के साथ--बातें न करना। एक कोने में--दरवाज़े के कोने में तुम खड़ी हो रहना। यदि कोई प्रश्न करे तो मुंह नीचा करके नम्र नयनों से नीरव हो रहना। देखना कहीं हाथ के कंकण उस समय झंकार न कर उठें जब कि तुम उस सज्जन अतिथि को राह दिखाकर लिवा ला रही हो। न हो उसके साथ--उस कहीं के साथ--बात न करना। एक कोने में--दरवाज़े के कोने में--खड़ी हो रहना।

वह तुम्हारा काम--घर का काम--अभी (समाप्त) नहीं हुआ? वह सुना जान कौन अतिथि आज आया है? पूजा आरती की डाली तुमने नहीं सजाया क्या? अब भी क्या गोष्ठगृह में प्रदीप जगाना नहीं हुआ? मांग में सिंदूर बिंदु नहीं लगाया तुमने? सायंकाल का शृंगार नहीं हुआ? वह क्या तुम्हारा काम--घर का काम--(समाप्त) नहीं हुआ? वह सुना जान कौन अतिथि आज आया है आज आया है।

ऊपर की दोनों कविताओं में जिस प्रेम परम-संबंध का संकेत पाया जाता है वह किसी तटस्थ व्यक्ति के प्रति असंभव है। मध्ययुग के ईसाई मरमी सन्तों ने अपनी महिमामयी प्रतिभा के बल पर ईश्वर और जगत के व्यवधान को भर देने की चेष्टा की है। हिब्रू शास्त्रों के अनुसार यह संसार ईश्वर के साथ से विच्छिन्न हुआ यन्त्र है अतएव पापभूमि है। इस पापभूमि पर जन्मनेवाले मनुष्य पापात्मा होते हैं। पाप की

बान्रा उपान्ान नहा है। मत्यलाकवामा स्वभावत न्ी पापा है। न्उरत ईमा न्विर और जगत के न्यवधान का भग्न क लिए अवताण न्ए ये। स्वग स उतग्न क कारण मत्यलोक म शूना म उन्ह विद्ध हाना पन्ा था। इमा शूना का वन रव गय ह अपन भक्ता क उद्धार क न्लिए। इमा लिए स्वग का न्च्छा रखनवाल का इम शूना का--पग्म न्ुख का--वरण करना आवन्यय है। मध्ययुग क मरमिया म न्म न्ुख भावना और पापवाध का मस्कार ज्या का त्या न्ह गया था। न्वीन्द्रनाथ क माथ न्न मरमी मन्ता की तुन्ना वग्ना दोना क प्रनि अन्याय वग्ना ह। रवीन्द्रनाथ क मिन (प्रभु भा नहा !) अपना वालिरा वधू क गन्यिा के मन का प्यार वग्त हैं। न्गि नाहक डग वग्त ह कि वन न्म अजात वाकि स न्वागन-मवधना न पाकर क्रुद्ध हाग।

इम प्रकार एक तरफ है पाप बाध, दुख वरण और भय दूमरा आर है आनन्द अमत प्रम। इन दो दृष्टिकोणा की तुलना वग्ना न्यथ है। तुन्ना वग्नवान का निराश होना निश्चित है।

भारतवप क वष्णव भक्त-कवि न्ीला क न्ाग भगवान का उपन्धि वग्ते हैं। भगवान नविन म अनन्त हैं विन्तु प्रम क भत्र म मान्त नविन म वह पूण हैं प्रम म भिक्षुक नविन म वह उन्मामान ह प्रम म आमक्त। मान्त और अनन्त क न्म न्द्व ने भारताय प्रमकान्य का एक विचित्र रम म मधर कर न्िया है। वष्णव भक्ता की कन्पना म श्रीकृष्ण न्ारका म पूण मथुरा म पूणतर और वन्दावन म पूणतम ह। द्वारका उनक एश्वय की न्ीला भूमि है और वृन्दावन प्रम का। इम वन्दावन म वन नाचत हैं गात हैं मचल्त है और मार वन्दावन को प्रम स इतना भर न्ते ह कि उनके अन्दर क भगवान अश का वष्णव कवि एकदम भन्ल जाता है। यह प्रम न्ीला भारतवप की माधना म ना मभव हुई ह।

परन्तु रवीन्द्रनाथ यहीं आकर नहीं रुव।

वष्णव कवि ठाम रूप का उपामक है। वह कविता आरभ करन क पहन स्वीकार कर न्ता है कि उमके वण्य कृष्ण मन चित आनन्दमय

जाग बरता गया है। विस्मयता का द्रार हो गया है। रवीन्द्रनाथ कहते हैं—

तोरा शुनिस नि कि शुनिस नि तार पायेर ध्वनि
ओइ ज आस आस आस।
युग युग पले पल दिन रजनी
स ज आस आसे आस।
गयछि गान यखन यत
आपन मन ख पार मतो
सकल सुर बज छ तार
आगमनी—
स ज आस आसे आसे।

अर्थात तुम लोगों ने क्या उसके पैरों की ध्वनि नहीं सुनी? वह आता है आता है (बराबर) आता है। प्रत्येक युग में और प्रत्येक क्षण में वह आता है आता है (बराबर) आता है। जब जितने गान मैंने पागल की भाँति अपने आप गाये हैं उन सभी स्वरों में उसकी आगमनी बजी है। वह आता है आता है (बराबर) आता है।

कतो कालेर फागुन दिन बनेर पथ
से ज आसे आसे, आसे।
कत श्रावन अंधकार मेघर रथ
से ज आसे आसे आसे।
दुखेर पर परम दुख
तारि चरन बाजे बुके
सुख क्लन बुलिय से देय
परशमनि।
स ज आसे आसे आसे।

१ बंगला गीतों को हिंदी-अक्षरों में लिखते समय उच्चारण सौकर्य के लिए कहीं-कहीं परिवर्तन कर दिया गया है।

कितने ही काल के फागुन मास के वनमार्ग से, वह आता है आता है (बराबर) आता है। कितने ही सावन की अंधियारी में मेघों के रथ पर वह आता है आता है, (लगातार) आता है। दुःख के बाद दुःख परम दुःख—उस समय भी उसी के चरणों की ध्वनि हमारे हृदय में बजा करती है और सुख में (न जाने कब) वह पारसमणि से (हृदय को) सहला देता है। वह आता है आता है (लगातार) आता है।

रवीन्द्रनाथ में न तो केवल उपनिषदों का अध्यात्मज्ञान है और न वैष्णवों की प्रेम-लीला। इन दोनों का अभिनव मनोरम सामञ्जस्य ही रवीन्द्रनाथ की कविता है। रवीन्द्रनाथ ने अधिक साफ भाषा में और क्या कहा—

इसलिए—तुम्हारा आनंद है मेरे ऊपर इसलिए तुम नीचे आये हो (क्योंकि) हे त्रिभुवनेश्वर मैं अगर न होता तो तुम्हारा प्रेम मिथ्या (हो गया) होता। मुझे ही लेकर यह मेला है मेरे हृदय में रस की धार बह रही है मेरे जीवन में विचित्र रूप धारण करके तुम्हारी इच्छा तरंगित हो रही है।

ताइ तोमार आनंद आमार पर
तुमि ताइ एसेछो नीचे।
आमाय नइले त्रिभुवनेश्वर
तोमार प्रेम हतो ये मिछे।
आमाय निये मिलेछे एइ मेला।
आमार हियाय चलछे रसेर खेला
मोर जीवने विचित्र रूप धरे।
तोमार इच्छा तरङ्गिछे।

यही है रवीन्द्रनाथ की प्रेमसाधना। इसमें इसी मरमी भाव (Mysticism) को खोजना बेकार है। पर है यह मरमी भाव। भारतवर्ष के बेकार जो आदि संतों की मरमी भाव उसी कोटि का है।

९

जाना है, जाना है, आगे जाना है

रवीन्द्र की कविताओं के पाठ ने मेरी अन्तरात्मा को एक व्याकुल स्वर दिया था। वह है—जाना है, जाना है, सब कुछ छोड़कर आगे जाना है। मैं जानता हूँ यह सीमा है, जो एक दूसरे से मिलने के लिए व्याकुल है। यह व्याकुलता केवल क्षणभर के आनन्द के लिए है। इसके बाद जाना है। कहाँ जाना है? कुछ नहीं मालूम। क्यों जाना है? राम जाने! पर कोई बुला रहा है सुदूर से कोई व्याकुल भाव से पुकार रहा है कहा जाना है। उसी की अभिसार यात्रा के लिए सीमा को यह सारा आनन्द छोड़कर जाना है।

बंगाली के युग को लीजिए। यहाँ रवीन्द्र साहित्य समुद्र में एक नया ज्वार आया है। भाषा भाव कल्पना छन्द संगीत—सब में एक प्रचण्ड गति आ गई है और इसके साथ ही कवि का वह चिरपरिचित स्वर नये ज्ञान रूप में नवीन सौन्दर्य और नवीन वैभव के साथ प्रकट हुआ है। इस वैभव को समझने के लिए एक बार इसकी पूर्ववर्ती कविताओं को इस दृष्टि से देख लेना अनुचित न होगा।

अपने कवि जीवन के आरम्भिक दिनों में ही रवीन्द्रनाथ ने परदेश में यात्रा की है। उन्होंने कहा है—

छुटे आय तब—छुटे आय सब
अति दूर—दूर याब
कोथाय याइब?—कोथाय याइब!
जानि ना आमरा कोथाय याइब—
समुखेर पथ यथा लये याय—

अर्थात्— तो फिर दौड़ आओ —तुम सभी दौड़ आओ दूर—बहुत दूर जायेंगे। कहाँ जाओगे—मैं ही कहाँ जाऊँगा ? हम नहीं जानते कहाँ जायेंगे —यह सामने का रास्ता जहाँ ले जाय।

इस निरुद्देश यात्रा के आवेग को कवि ने सारे जीवन में अनुभव किया है। एक और वे कहते हैं —

जगत स्रोते भेसे चलो, ये यथा आछ भाइ
चलेछे यथा रवि-शशी चलो रे सेथा याइ।'

अर्थात्— भाई जो जहाँ हो वहाँ से जगत्स्रोत में बह चलो। जहाँ ये रवि और शशि जा रहे हैं चलो वहीं जायँ।

अपनी निरुद्देश यात्रा नामक कविता में विदेशिनी के अभिसार के लिए चलते चलते वे उत्सुकता सहित पूछते हैं—

'आर कत दूर निये यावे मोर
हे सुंदरी ?
बलो कोन पार भिड़िबे तोमार
सोनार तरी ?
यखनि शुधाइ ओगो विदेशिनी
तुमि हासो शुधु मधुर हासिनी
बुझिते ना पारि की जानि की आछे
तोमार मने।
नीरव देखाओ अंगुलि तुलि
अकूल सिन्धु उठिछे आकुलि
दूरे पश्चिमे डुबिछे तपन
गगन कोने।
की आछे होयाय—चलेछि किसेर
अन्वेषणे ?'

अर्थात्— और कितना दूर मुझे ले जाओगी हे सुन्दरी ! बताओ किस पार तुम्हारी सोने की नैया जाकर लगेगी ? हे विदेशिनी मैं जभी पूछता

जाना है, जाना है, आगे जाना है

रवीन्द्र की कविताओं के पाठ से मेरी अन्तरात्मा को एक व्याकुल कर दिया गया है। वह है--जाना है जाना है सब कुछ छोड़कर आगे जाना है। मैं असीम हूँ यह सीमा है जो एक दूसरे से मिलने के लिए व्याकुल है। यह व्याकुलता केवल क्षणभर के आनन्द के लिए है। इसके बाद जाना है। कहाँ जाना है? कहाँ नहीं मालूम। क्या जाना है? राम जाने! पर कोई पुकार रहा है सुदूर से कोई व्याकुल भाव से पुकार रहा है यहाँ जाना है। उसी की अभिसार यात्रा के लिए सीमा को यह सारा आनन्द छोड़कर जाना है।

बलाका के युग को लीजिए। यहाँ रवीन्द्र साहित्य समुद्र में एक नया ज्वार आया है। भाषा भाव कल्पना छन्द संगीत--सब में एक प्रचण्ड गति आ गई है और इसके साथ ही कवि का वह चिरपरिचित स्वर नवीन उल्लास नवीन सौन्दर्य और नवीन वैभव के साथ प्रकट हुआ है। इस वैभव का समर्थन के लिए एक बार इसकी पूर्ववर्ती कविताओं को इस दृष्टि से देख लेना अनुचित न होगा।

अपने कवि जीवन के आरम्भिक दिनों में भी रवीन्द्रनाथ ने परिदेश में यात्रा की है। उन्होंने कहा है--

छूट जाय तब--छूट आय सब
अति दूर--दूर या य
कोथाय याइब?--कोथाय याइब!
जानि ना आमरा कोथाय याइब --
समख़र पथ यथा लय याय --

अर्थात्— ना फिर दौड़ आओ —तुम सभी और आओ दूर—बहुत दूर जायेंगे। कहाँ जाओगे—मैं भी कहाँ जाऊँगा ? हम नहीं जानते कहाँ जायेंगे —यह सामने का रास्ता जहाँ ले जाय।

इस निरुद्देश यात्रा के आवेग को कवि ने सारे जीवन में अनुभव किया है। एक बार वे कहते है —

जगत स्रोते भेसे चल य यथा आछ भाइ
चलेछ यथा रवि-शशी चल रे सेथा याइ ।

अर्थात्— भाई जो जहाँ हो वहाँ से जगत्स्रोत में बह चलो। जहाँ ये रवि और शशि जा रहे हैं चलो वहीं जायें।

अपनी निरुद्देश यात्रा नामक कविता में निरुद्देश्य अभिसार के लिए चलते चलते वे उत्सुकता सहित पूछते हैं—

आर कत दूर निये याबे मोर
हे सुन्दरी ?
बलो कोन पार भिडिबे तोमार
सोनार तरी ?
यखनि शुधाइ ओगो विदेशिनी,
तुमि हासो शुधू मधुर हासिनी
बुझिते ना पारि की जानि की आछे
तोमार मन ।
नीरव देखाओ अंगुलि तुलि
आकूल सिन्धु उठिछे आकुलि
दूर पश्चिमे डुबिछे तपन
गगन कोने ।
की आछे होथाय—चलेछि किसेर
अन्वेषणे ?”

अर्थात्— और कितना दूर मुझे ले जाओगी हे सुन्दरी ! बताओ, किस पार तुम्हारी सोने की नया जाकर लगेगी ? हे विदेशिनी मैं जभी पूछता

जाना है, जाना है, आगे जाना है

पराग्न का कविताओ क पीछ ग्नका अन्तरगामा का एक ्याकल स्वर छिपा ग्आ ह । वग है--जाना ह जाना है गव वछ छोन्कर आग जाता है । म अगाम हू यग गामा है ानो एक दूमर म मिन्न क लिए ्याकल है । यग व्याकग्ना वचग शणभर क आनन्द क लिए है । इमक बाद जाना ह । क्हाँ जाना है ? वछ नहा माजूम । क्या जाना है ? गम जान ! एक बार ग्गा ग्ना है सदूर म वाग व्याकल भाव म पुकार ग्ना है वग जाना ह । उमा की अभिमार यात्रा क लिए सामा का यग गाग आनन्द छोन्कर जाना है ।

बलाका क यग का ाजिग । यहाँ रवान्द्र माहित्य ममुद्र म एक नया ज्वार आया ह । भाषा भाव कल्पना छन्द मगीत--सब म एक प्रचण्ड गति आ गई ह और ्मक माथ ही कवि का वह चिरपरिचित मर नवान ग्पराम नवीन मौन्दय और नवान वभव क साथ प्रकट हुआ है । ्म वभव का समथन के लिए एक बार इमका पूववर्ती कविताआ का ्म दृष्टि म दख लेना अनचित न होगा ।

अपन कवि जावन क आरम्भिक दिना म हा रवान्द्रनाथ न पथिक बेश म यात्रा का है । उन्हान कहा ह--

> छूट आय तब--छूट आय सब
> अति दूर--दूर मा व
> कोयाय धाइब ?--कोयाय याइब !
> जानि ना आमरा कोयाय याइब --
> समस्त पय यथा लय याय--

अर्थात्— ना फिर दौड़ आओ —तुम सभी दौड़ आओ, दूर—बहुत दूर जायँ। कहाँ जाओगे—मैं ही कहाँ जाऊँगा ? हम नहीं जानते कहाँ जायँगे —यह सामने का रास्ता जहाँ ले जाय।

इस निरुद्देश यात्रा के आवेग को कवि ने सारे जीवन में अनुभव किया है। एक बार वे कहते हैं —

'जगत स्रोते भेसे चल, जे यथा आछ भाइ
चलेछे यथा रवि-शशी चल रे सेथा याइ।'

अर्थात्— भाई जो जहाँ हो वहाँ से जगत्स्रोत में बह चलो। जहाँ ये रवि और शशि जा रहे हैं चलो वहीं जायँ।

अपनी निरुद्देश यात्रा नामक कविता में किसी अनिर्दिष्ट के अभिसार की बात कहते-कहते वे व्यग्रता सहित पूछते हैं—

'आर कत दूर निये यावे मोर
हे सुन्दरी ?
बलो कोन पार भिड़िबे तोमार
सोनार तरी ?
यखनि शुधाइ ओगो विदेशिनी
तुमि हासो शुधु मधुर हासिनी
बुझिते ना पारि की जानि की आछे
तोमार मने।
नीरव देखाओ अंगुलि तुलि
आकूल सिंधु उठिछे आकुलि
दूर पश्चिमे डुबिछे तपन
गगन कोने।
की आछे होथाय—चलेछि किसेर
अन्वेषणे ?'

अर्थात्— और कितना दूर मुझे ले जाओगी हे सुन्दरी! बताओ किस पार तुम्हारी सोने की नाव जाकर लगेगी ? हे विदेशिनी मैं जभी पूछता

मनते कि पास कूरर पथ
पारर बाँनि उठछ बाजि ।

अथान-- अर म-ार अर आ मर मानर ज म की नया व म-ार वया नू गा र-ा ह दूर म उग पार का वना उज उठा है ।

रवी ग्रन्थि म रग प्रवार का नाव और म-ाह समा आर पानि का कविनाआ का गम्या यत्न अधिक है । गरमें एक ही मर है-- जाना ह जाना है उग गद्दूर की वना का पुकार पर जाना है । यह यात्रा ग्रमा नहा है जा वार विघ्न बाधा म रुक जाय--

यात्री आमि ओर
पारब ना कउ राखत आमाय धर

अथात्-- मैं यात्री हू मझ कोई भा पकडकर राव नहा सकता । कोई नहा रुग मकता । अगर नाव न मिल ता भा यात्रा नहा रुकगा ।

य दिल होय भवसागर माझ खान
कलेर कथा भाव ना से
चायना कभू तरीर आश
आपन सख सातार काटा सेइ जान
भाव सागर माझ खान ।

अथात्-- जा भवसागर म रहता है वह किनार की बात नहा सोचता तरी की आशा म ताका नहा करता । वह जानता है मस्तमौला रा तरह तरना इस भवसागर म !

इस निरद्दश यात्रा का वाई गतव्य स्थान नहा ह । इसम कहा विराम नही विनाम नहा । कभी कभा रास्त म थाडा दर रुक जाना पडता ह और बस ! नहा ता इस महायात्रा का कहा अवमान नहा है ।

पथर शष मिलब वासा
स कभू नय आमार आशा
या पाव ता पथ पाबो
दुयार आमार खल्यि दाओ ।

अर्थात्— रास्ता खतम हो जाने पर कहाँ वासस्थान मिलेगा यह मैं कभी आशा नहीं की। जो कुछ मिलेगा वह रास्ते में ही मिलेगा। ऐसी हालत में रुद्ध हो कर रहना बुद्धिमत्ता नहीं है खोल दो दरवाजा।

उनके यात्रा भावन भी सुनिए—

ज्ञड एसेछे एबार ओरे
ज्ञड के पेलेम साथी।
प्रथम बाहिर हाये छिलेम
प्रथम आलोर रथे।"

अर्थात्— तूफान साथी बनकर आया है और प्रथम आलोक के रथ पर ही मैं बाहर हुआ था।

यह चलना कुछ दुखकर नहीं है। यह तो स्वभाव है। लुट जाने में, दौड पड़ने में चल देने में कवि को आनन्द है—

"लुटे याबार छुटे याबार
चलबार इ आनन्दे।"

बलाका में यह सुर अधिक स्पष्ट और अधिक दृढ़ होकर प्रकट हुआ है। बलाका को अगर गति का श्रेष्ठ काव्य कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। आगे दो-चार कविताओं का हिन्दी रूपान्तर दिया जा रहा है जो हमारे कथन को परिपुष्ट कर सकता है। सख्या 'बलाका' पुस्तक की सख्या के अनुसार है।

हम चलते हैं सामने की ओर कौन है जो हमें बाँधेगा? जो लोग पीछे के खिंचाव में पड़ कर पिछड़ गये हैं वे रोयेंगे रोयेंगे। हम रक्त चरणों से बाधा छिन्न करेंगे धूप और छाया में दौडकर चलेंगे। जो अपने ही शरीर को जकड कर केवल फन्दा ही पैदा करेंगे वे रोयेंगे रोयेंगे।

रुद्र ने हम पुकारा है अपनी तुरही बजाकर। मस्तक पर पुकारा है मध्याह्न के सूर्य ने। मन हमारा सारे आकाश में व्याप्त हो गया है

पागल हो गया हूँ आलोक के नशे में । वे दरवाजा बन्द किये हैं उनकी आँखें चौंधिया जायेंगी । वे रोयेंगे रोयेंगे ।

अरे हम गागरा और पवना को जीतेंगे उन्हें सौंप जायेंगे । अकेले पथ पर हम नहीं डरते साथ में हमारा साया घूमा करता है । अपने नशे में आप ही मतवाले होकर उद्दाम सीमा बाँध रखी है । घर छोड़कर आँगन जाने उन्हें रुकावट पड़ेगी पड़ेगी । वे रोयेंगे रोयेंगे ।

जागेगा ईशान बजेगा विषाण (रणसिंघा) और जल जायगा सारा बन्धन । हवा में विजय निशान उड़ेगा नष्ट हो जायगी सारी दुविधा और सारा द्वन्द्व । मृत्यु सागर मथन करके हम अमृत रस हर लायेंगे और वे जीवन में चिपके रह कर मरण साधन साधेंगे । वे रोयेंगे रोयेंगे ।

नीचे जो कविता दी जा रही है वह केवल गति से ही सम्बन्ध नहीं रखती वह मनुष्य की विपुल व्यापकता की ओर भी इशारा करती है । भगवान के तीन रूप—सुन्दर प्रेमिक और रुद्र की साधकता और यात्री मनुष्यों की व्यथ लोकप्रियता का सुन्दर चित्र उसमें प्रतिबिम्बित हुआ है ।

'हे मेरे सुन्दर जाते जाते रास्ते के प्रमाद में मतवाले होकर वे—न जाने वे लोग कौन हैं—जब तुम्हारे शरीर पर धूल डाल जाया करते हैं तो मेरा अन्तर हाय हाय कर उठता है । रोकर कहता हूँ हे मेरे सुन्दर आज तुम दण्डधर हो जाओ विचार करो ।—इसके बाद देखता हूँ यह क्या ! खुला है तुम्हारे विचार घर का दरवाजा—नित्य चलता है तुम्हारा विचार । प्रभात काल का आलोक चुपचाप उनके रक्त नयनों पर पड़ता है शुभ्र वनमल्लिका का सुवास स्पर्श करता है लालसा से उद्दीप्त निश्वास को सन्ध्यारूपी तपस्विनी के हाथ से जलाई हुई सप्तर्षियों की दीपमालिका उनकी मत्तता की ओर सारी रात देखा करती है—हे सुन्दर तुम्हारे शरीर पर जो धूल डालकर चले जाते हैं । हे सुन्दर तुम्हारा विचार घर है पुष्प वन में पवित्र हवा में तृण पुंज में पतंग गुंजन में वसन्त के पक्षियों के कूजन में तरंग चुम्बित तीर में मर्मर ध्वनि करते हुए पल्लवों के व्यजन में ।

प्रेमी मेरे! वे घोर निर्दय हैं, दुर्वार है उनका आवेग। अपनी नग्न वासना को सजाने के लिए वे छिपते फिरते हैं तुम्हारा आभरण हरण करने को। उनका आघात जब प्रेम के सर्वांग में लगता है तो मैं उसे सह नहीं सकता। आँसू भरी आँखों से रोकर तुम्हें पुकारता हूँ—खड्ग धारण करो प्रेमी मेरे! विचार करो! इसके बाद देखता हूँ, यह क्या, कहाँ है तुम्हारा विचार घर? माता का स्नेहाश्रु झड़ पड़ता है उनकी उग्रता पर, प्रणयी का असीम विश्वास उनके विद्रोह शूल से क्षत वक्ष स्थल का ग्रास कर लेता है। प्रेमी मेरे, तुम्हारा वह विचारागार है। विनिद्र स्नेह का स्तब्ध निःशब्द वेदना में, सती की पवित्र लज्जा में, मित्र के हृदय के रक्तपात में, राह देखनेवाले प्रणय की विच्छेद रात्रि में, अश्रुप्लुत करुणा से परिपूर्ण क्षमा के प्रभात में।

हे मेरे रुद्र, वे लोभग्रस्त हैं, मोहग्रस्त हैं, तुम्हारे सिंहद्वार को पार करके, छिपकर बिना बुलाये वे सेंध मारकर तुम्हारे भाण्डार में चोरी करते हैं। वह चुराया हुआ धन, वह दुर्वह भार प्रतिक्षण उनके मर्म को दला करता है, उतारने की शक्ति नहीं रह जाती। रोकर तब मैं तुमसे कहता हूँ, क्षमा कर दो इन्हें, हे मेरे रुद्र? आँखें फाड़कर देखता हूँ, किस रूप में वह क्षमा आती है? वह आती है प्रचण्ड आँधी के रूप में, उसी आँधी में वे धूलिसात् हो जाते हैं। चोरी का वह प्रकाण्ड बोझ खंड खंड होकर उस हवा में न-जाने कहाँ उड़ जाता है? हे मेरे रुद्र, तुम्हारी क्षमा है गरजती हुई वज्राग्नि की शिखा में, सूर्यास्त के प्रलय लेख में, रक्त के वर्षण में, अकस्मात् संघात के प्रति घर्षण में।

अरे दीन, अरे ओ उदासीन, दूर से क्या सुन रहा है वह मृत्यु का गर्जन, अगणन का वह कोलाहल, लक्ष लक्ष वक्षस्थल से मुक्त वेग रक्त का कल्लोल! आग की बाढ़ की तरंगों का वेग, विषरूपी श्वास-झटिका के मध्य भूलोक और आकाश को मूर्छित और विह्वल करनेवाला प्रत्यक्ष मृत्यु का आलिंगन—इन्हीं के बीच, रास्ता चीरते हुए नवीन समुद्र के किनारे नया लेकर पार होना है—वह कर्णधार बुला रहा

है आदेश गया है—अब की बार का बन्दरगाह का बंधनकाल समाप्त हुआ पुराने समय का रगार बार-बार उसी की खरीद बिक्री अब अधिक न चलेगी । (सड़ा करने से) चलना रुक जाता है सत्य की सारी पूँजी समाप्त हो जाती है—शायद इसीलिए कर्णधार बुला रहा है तूफान के बीच नये समुद्र के तट की ओर नाव खेना होगा । इसलिए यह देख जहाँ तहाँ पर घाट पर का सबका लगा लिए दौड़ आ रहा है ।

नई उषा का स्वर्णद्वार गगन में और कितनी दूर है ? अकस्मात जगकर ये सभी मौन आतस्वर से पूछ रहे हैं । आँधी के पुंजित मेघ की कालिमा में प्रकाश ढक गया है—कोई तो नहीं जानता रात है या नहीं निःशीथ में फेनिल तरगें उठ रही हैं—उसी में कर्णधार पुकार रहा है—नये समुद्र के तीर नया खेना होगा । कौन हैं ये जो बाहर निकल आये ? पीछे माता रो रही है दरवाजे पर खड़ी प्रेयसी आँख मूँद रही है । आँधी के गर्जन में विच्छेद का हाहाकार बज रहा है घर घर आराम की सेज सूनी हो गई । आज्ञा हुई है—यात्रियो यात्रा करो यात्रा करो बन्दरगाह का समय समाप्त हुआ ।

मृत्यु भेद करके हिल उठी है यह नाव । किस घाट पर पहुँचेगी कब पार होगी—पूछने का तो समय न मिला । थोड़े में यही जाना है कि तरंग से संघर्ष करके नाव ले जाना है । पाल को खींच रखना होगा पतवार को जोर से पकड़ रहना होगा —और फिर बचें या मरें नाव खे ले जाना होगा । आदेश आया है—बन्दरगाह का समय समाप्त हुआ ।

अज्ञात समुद्र के तीर पर अज्ञात है वह देश—वहीं के लिये आँधी के प्रत्येक स्वर में शून्य के कोने-कोने में प्रचण्ड आह्वान जग उठा है । मृत्यु का गान नवजीवन के अभिसार के मार्ग में ध्वनित हो उठा है घोर अंधकार में पृथ्वी का जितना दुःख है जितना पाप है जितना अमंगल है जितना अश्रुजल है जितनी हिंसा और जितना हलाहल है—सभी किनारा लाँघकर ऊपर के आकाश पर व्यंग करते हुए तरंगित हो

उठे हैं। तो भी नाव ले चलनी होगी, सब ऊँच-खाल कर पार होना होगा—कान में ले कर निखिल (विश्व) का हाहाकार, सिर पर लेकर उन्मत्त दुर्दिन, चित्त में ले कर अतहान आशा। हे निर्भीक हे दुःख अमित्र! अरे भाई तुम किसकी निन्दा करते हो? सिर झुका दो। यह हमारा तुम्हारा पाप है। विधाता के वक्षस्थल में यह ताप बहुत दिनों से जमा था जो आज वायव्य कोण में घनीभूत हो गया है—भीरु का पक्षाभूत भय, प्रबल का उद्धत अन्याय, लोभी का निष्ठुर ध्यान, वंचित का नित्य का चित्त क्षोभ, जाति-अभिमान, मनुष्य की अधिष्ठात्री देवी का प्रभूत असम्मान आज विधाता का वक्ष विदीर्ण करके, आँधी के दीर्घ श्वास के साथ जल और स्थल में चक्कर लगा रहा है।

टूट पड़े आँधी, जागे वह तूफान और निःशेष हो जाय निखिल (चराचर) का सारा वज्र बाण! रख दो निन्दावाणी, रख दो अपने पवित्र का अभिमान, केवल एक मन से यह प्रलय-पयोधि पार करो—नव सृष्टि के उपकूल पर नई विजय ध्वजा फहराकर।

नित्य ही दुःख को देखा है, नाना ढंग से पाप को देखा है, जीवन स्रोत में प्रतिक्षण अशान्ति का आवर्त देखा है। समस्त पृथ्वी में व्याप्त होकर मृत्यु आँखमिचौनी खेल रहा है। वे जाते हैं, वे लोग चले जाते हैं और क्षणभर के लिए जिन्दगी को मरोड़ उठा जाते हैं। देखो आज उनका अरूप! विराट स्वरूप! इसके बाद खड़े हो जाओ सामने और कहो अकम्पित हृदय से—नहीं डरता तुमसे, प्रतिदिन इस संसार में तुम्हें जाना है। तुमसे हम अधिक सत्य हैं—इस विश्वास पर देह प्राण दूँगा! शान्ति सत्य है, शिव सत्य है और सत्य है वह चिरन्तन एक!"

यदि मृत्यु के अन्तर में प्रवेश करके अमृत न पा जाय, यदि दुःख के साथ जूझकर सत्य न मिले, पाप यदि अपने प्रकट दीन की लज्जा में न मर जाय, यदि अहंकार अपनी असह्य सज्जा से न टूट जाय, तब यह घर छोड़नेवाले शत शत प्रासाद-प्राचीर की ओर दीप्त-दीप्त नक्षत्रों की भाँति किस आश्वास वाणी पर मरण की ओर दौड़ पड़ते? वीर का

मा रागराग माना की गन अधयागग दगसा आ मृत्य है वह क्या पृथ्वी का धूल म गा जायगा ? स्याग क्या तरा सरार लिया जायगा ? विश्व का माहारी माया जल गा गुजायगा ? रात का वह तपस्या क्या लि त न आयगा ? निस्तब्ध हुए रात्रि म मृत्य क धान म जब मान्य त अपरा गाय गाथा पूण का ता क्या स्वरा की अमर महिमा लिखाई न गा ?

अर मुसाफिर वह स्पा पुराना वष की आल वगान रात्रि कट गई। तर पथ पर दूर गेर (धूप) रे क भाग्य गार का आह्वान गाया है। वह महूर का आर गम्भ क पार ताव गायमान सुर म वध्र वज रहा है माना गम्भा भृग हुए निगा वरागी का सन्तारा हा।

अर आ मुसाफिर यह धूसर पथ की धूल तेरी धात्री है चलते स उन्मत्त घूर्णि गति क अचल म लिपट कर घूर्णापात्र (ववण्डर) के वश स्यन्द म लवकर इस पृथ्वी के बन्धन स हरण करके वह ल जाय तुझे दिगन्त क पार दूसर दिगन्तर म। घर का मगल गख भर लिए नहीं है अर सध्या का दीपालोक भी नहीं प्रयसी का अश्रुपूर्ण नयन भी नहीं।

रास्ते रास्ते वाम्वशाखी का आशीर्वाद श्रावण रात्रि का वज्र निनाद अपेक्षा कर रहा है। रास्ते रास्ते काँट का अभ्यर्थना है रास्ते रास्ते गुप्त सर्प का गूढ फण है। जयशब्द तेरी निंदा करेगा यही तेरे लिए रुद्र का प्रसाद है।

क्षति तेरे चरणा म अमूल्य उपहार लाकर रख दगी। तून अमृत का अधिकार चाहा था —वह तो सुख नहीं है अर वह तो विश्राम नहीं है वह शान्ति नहीं वह आराम भी नहीं है। मृत्यु तुझे आघात करेगी द्वार-द्वार पर तू प्रवेश निषिद्ध पायगा यही तो तेरा नये वर्ष का आशीर्वाद है यही तेरे लिए रुद्र का प्रसाद है। भय नहीं भय नहीं ओ मुसाफिर गृहत्यक्ता हृत दिशा अलक्ष्मी तेरी वरदात्री है।

अर मुसाफिर वह दस पुराने वर्ष की जीर्ण-क्लान्त रात्रि कट गई। आया है वह निष्ठुर हो जान दे द्वार का बन्धन दूर अरे हो जान दे उस

जाना है, जाना है, आग जाना है

मन्क पात्र का चण विचूण! मैं नग समझता नहीं पहचानता नग जानता उस पकन उनका हाथ —ध्वनित हा उठ तर हृत्कम्पन म उनका शान्त वाणी! अर ओ मुसाफ़िर वन पुराना रात कट गर कट जान द नम!

'पुरातन वत्सरर जीण क्लान्त रात्रि
आइ कट गल आरे यात्रा!
एमेच निष्ठुर,
हाक र द्वारर बाध टूर
होक र मन्र पात्र-टूर!
नाइ वूझि नाइ चिति नाइ ता र जानि
धर ता'र पाणि —
ध्वनिया उठलक तव हृत्कम्पन ता'र दाप्त वाणा!
ओर यात्री
गच कट याक कटे पुरातन रात्रि!

११

रूप और अरूप, सीमा और असीम

इस स्थान पर कवि के रूप और अरूप तथा सीमा और असीम के विषय में कुछ विचार उनके विविध ग्रन्थों से प्रस्तुत किये जाते हैं। ये विचार कवि की कविता को समझने में सहायक होंगे। वस्तुतः रूप और अरूप के सम्बन्ध में जितना विचार कवीन्द्र ने किया है उतना शायद ही और किसी कवि ने किया हो। रूप और अरूप तथा सीमा और असीम के इस सर्वांगीण विचार ने ही कवीन्द्र की काव्य सम्पत्ति को नाना वैचित्र्यों से समृद्ध किया है।

रूप और अरूप नामक प्रबन्ध में कवि ने लिखा था (१९१६ ई.)—

काल से होकर देखो तो सारे पदार्थ प्रवहमान हैं। इसीलिए हमारे देश में विश्व को जगत कहते हैं—संसार कहते हैं। क्षण भर के लिए भी वह स्थिर नहीं है—वह केवल चलता है, संसरण करता है।

जो केवल चलता है, संसरण करता है, उसका रूप हम देखते कैसे हैं? रूप में तो एक स्थिरता है। जो चीज चल रही है उसको मानो वह नहीं चल रही है इस तरह से देखने से हम देख ही नहीं पाते। लट्टू जब वेग से घूमता रहता है तो हम उसे स्थिर सा देखते हैं। मिट्टी फोड़कर जो अंकुर निकलता है वह प्रतिक्षण ही परिवर्तित हो रहा है और इसीलिए उसकी परिणति होती है। किन्तु जब उसकी ओर देखते हैं, वह कुछ भी व्यस्तता नहीं दिखलाता, मानो वह अनन्तकाल तक इसी प्रकार का अंकुर बना रहकर प्रसन्न रहेगा, मानो उसे बड़े होने की कोई इच्छा ही नहीं। हम उसे परिवर्तन भाव से नहीं देखते, स्थिति भाव से देखते हैं।

किन्तु गति को जो हम इस स्थिति से होकर जानते हैं यह स्थिति

का तत्त्व भी तो हमारा अपना गढ़ा हुआ नहीं है। हम गढ़न का नक्शा ही कहाँ है ? इसीलिए गति ही सत्य है स्थिति सत्य नहीं यह बात हम कब कह सकते हैं। असल में हम सत्य को ही ध्रुव और नित्य कहा करते हैं। सारी चंचलता के भीतर एक स्थिति है इसीलिए उस विधिनिसूत्र में हम जो कुछ भी जानते हैं जानते हैं नहीं तो जानने की यह बात भी न होती—जिस माया के रह रहे हैं उस माया ही नहीं कह सकते अगर उसमें सत्य की उपलब्धि न होती।

गति और स्थिति के इस सम्बन्ध पर कवि ने 'हमारा संसार' नामक प्रबन्ध में अधिक सरस भाषा में इसी बात को कहा था। इस तात्त्विक विवेचन को अग्रसर करने के पहले हम उसका एक अंश उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते—

पश्चात्रि मानो उसके बिखरे हुए केश हैं जो पीठ की तरफ एड़ी तक लटक गये हैं। किन्तु सौर-जगत-लक्ष्मी के शुभ्र ललाट पर यह काला तिल भी नहीं है। अगर उन तारिकाओं में से कोई भी अपनी माटी के एक छोर से कालिमा के इस नन्हे-से कण को पोंछ लेती तो उसके आँचल में जो दाग लगता वह बड़े-से-बड़े निन्दक की आँखों को भी न दिखाई पड़ता।

यह मानो आनन्द माता की गोद का काला शिशु है—अभी अभी जन्मा है। लाख-लाख तारिकाएँ निर्निमेष भाव में इस धरणी रूपी पालने के सिरहाने खड़ी हुई हैं। वे जरा भी हिलती-डुलती नहीं कहीं नींद न टूट जाय—

मेरे वैज्ञानिक मित्र से अधिक न सहा गया। उन्होंने कहा—तुम किस प्राचीन काल के वर्टिंगरूम की आराम कुर्सी पर पड़े पड़े झूम रहे हो। जब कि उधर बीसवीं शताब्दी के विज्ञान की रेलगाड़ी सीटी बजाकर दौड़ी जा रही है। ये तारिकाएँ हिलती नहीं यह तुम कैसी बात कहते हो ? यह तो विशुद्ध कविता है।

हमारी इच्छा थी यह कहने की कि तारिकाएँ जो चल रही हैं यह

तुम्हारा विशुद्ध युक्तिनिरपेक्ष है। मगर जमाना ऐसा मगर है कि यह बात जैसे ध्वनि की भाँति ही सुन पड़ता।

हमारे कवि के मत का स्वीकार कर लिया गया। इस मत की कालिमा भी पृथ्वी का रात के समान ही है। इसके विरुद्धान के पास विज्ञान का जबरदस्त आरोप रहता है किन्तु वह इसके शरीर पर हाथ नहीं लगाता। स्पष्टपूर्वक कहता है ऐसा यह ज्ञान स्थान रहा।

हमारा वक्तव्य यह है कि हम साफ देखते हैं कि तारिकाएँ चुपचाप रहती हैं। इसके ऊपर तो तर्क नहीं चल सकता।

विज्ञान कहता है तुम अत्यधिक दूर हो इसीलिए देखते हो कि तारिकाएँ स्थिर हैं। किन्तु यह बात सत्य नहीं है।

मैं कहता हूँ तुम अत्यन्त नजदीक से ताक झाँक किया करते हो इसीलिए कहते हो व चलता हैं किन्तु यह बात सच नहीं है।

विज्ञान आँखें लाल करके कहता है—सो कैसी बात ?

मैं भी आँखें लाल कर के जवाब देता हूँ अगर नजदीक का पक्ष लेकर तुम दूर को गाली दे सकते हो तो मैं भी अगर दूर का पक्ष लेकर नजदीक को क्या नहीं गाली दे सकता ?

विज्ञान कहता है जब दो पक्ष एकदम उल्टी बातें कहने लगें तो उनमें से एक को ही मानना पडता है।

मैं कहता हूँ तुम यह बात तो मानते नहीं। पृथ्वी को गोलाकार कहते समय तुम अनायास ही दूर की दुहाई दिया करते हो। उस समय कहते हो हम नजदीक हैं इसीलिए पृथ्वी समतल जान पड़ती है। उस समय तुम्हारा तर्क यह रहता है कि नजदीक से अंश को ही देखा जाता है दूर न रहने होने से समग्र को नहीं देखा जा सकता

हम जब सारी तारिकाओं को परस्पर में सम्बन्धित देखते हैं तब देखते हैं कि वे अविचल हैं स्थिर हैं। तब वे मानो गजमुक्ता के हार हैं। ज्योतिष विद्या जब इस सम्बन्ध सूत्र को विच्छिन्न करके किसी तारा को देखती है तब वह देखती है कि वह चल रही है—उस हार से भिन्न

मस्ताए बिगर कर लम्बन लगती है।

फिर गति और स्थिति के इस गोरखधंधे का समाधान क्या है? रूप और अरूप नामक प्रबंध में उपनिषद के एक मंत्र को उद्धृत करके (एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्ता अहोरात्राण्यर्द्धमासा मासा ऋतवः सम्वत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्ति) कवि कहते हैं—

अर्थात्, इन सारे निमेष और मुहूर्तों को हम एक तरफ तो देखते हैं कि चल रहे हैं और दूसरी ओर वे निरवच्छिन्नता सूत्र में बंधे हैं। इसीलिए काल विश्वचराचर को छिन्न भिन्न नहीं करता जा रहा है बल्कि सब ओर से परस्पर गूंथ कर, पिरोकर चल रहा है। वह संसार को चकमक की चिनगारी के समान फेंकता नहीं अत्यन्त यथायथ दीप शिखा की भांति प्रकाशित कर रहा है। अगर ऐसा न होता तो हम मुहूर्त भर को भी न जान सकते। क्योंकि हम एक मुहूर्त के साथ दूसरे का योग ही जान पाते हैं विच्छिन्नता को नहीं। इस योग का तत्त्व ही स्थिति का तत्त्व है। यही सत्य है यही नित्य है।

'जो अनन्त सत्य अर्थात् अनन्त स्थिति है वह अपने को अनन्त गति में ही प्रकाशित करता है। इसीलिए सभी प्रकाश की दो दिशाएं हैं। वह एक ओर बद्ध है नहीं तो प्रकाश ही न हो पाता और दूसरी ओर मुक्त है नहीं तो अनन्त का प्रकाश न हो पाता। एक तरफ वह हो चुका है और एक तरफ उसका होना समाप्त नहीं हुआ इसीलिए वह केवल चलता ही है। इसीलिए जगत जगत (गतिशील) है संसार संसार (संसरणशील) है। इसलिए कोई विशेष रूप अपने आपको चरम भाव से बद्ध नहीं करता— यदि करता, तो अनन्त के प्रकाश को बाधा पहुंचाता।

गति यदि रुद्ध होकर क्षण भर के लिए खड़ी हो जाती तो विश्व पुंजीभूत वस्तु पदार्थ से आच्छन्न हो जाता। 'बलाका' की कविताओं में गति और स्थिति के इन पहलुओं पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। कवि के शब्दों में—' जब तक मैं स्थिर होकर रहता हूं तब तक जमा रखता हूं जितना कुछ वस्तुभार है। तब तक मेरी आंखों में नींद नहीं रहती,

तब तक इस शिखर को कीड़े की तरह काट-काट कर खाता हूँ, तब तक केवल मर मरे हुओं का बोझा ही बढ़ता जाता है। यह जीवन सतत बढ़ि के भार से प्रति क्षण मृत्यु के शीत में मन्द पड़ जाने के कारण वृद्ध होता रहता है—

'यतक्षण स्थिर हये थाकि
तत क्षण जमाइया राखि
यत किछु वस्तुभार।
ततक्षण नयने आमार
निद्रा नाइ
ततक्षण ए विश्वेर कण्टक लाइ
कीटेर मतन,
ततक्षण
दुःसर बोझाइ शुधु बेड़े याय नूतन-नूतन,
ए जीवन
सतत बृद्धिर भार निमेष निमेष
वद्ध हय संचयेर शीत परश क्लेश।

किन्तु— जब चलता रहता हूँ तो उस चलने के वेग में संसार का आघात लगकर आवरण स्वयं छिन्न हो जाता है वन्ना का विचित्र संचय क्षय होता रहता है। पुण्य होता हूँ उस चलन के स्नान से चलने के अमृत पान से नवीन यौवन प्रतिक्षण विकसित हो उठता है—

चलन चलिया याइ से चलार वेगे
विश्वेर आघात लेगे
आवरण आपनि ये छिन्न हय
वदनार विचित्र सचय,
ह'ते थाके क्षय।
पुण्य हइ से चलार स्नान
चलार अमृत पान

नवीन यौवन
विकशिया उठ प्रतिक्षण ।'

अजा मैं यात्रा हूँ इसीलिए चिर दिन सामने की ओर ही देखता
यय ही मय पाछ की आर क्या बुलाते हो ? मैं ता मृत्यु के गुप्त प्रेम
। हू घर के कान म ता रुक नहीं रहूँगा । मैं चिरयौवन को माला पह-
नाऊगा—हाथ म मर उसी का तो वरण डाला है । फर दूगा और सब
भार वाद्धक्य का स्तूपाकार आयोजन ।'

ओगो आमि यात्री ताइ—
चिर दिन सम्मुखर पाने चाइ ।
केन मिछे
आमारे डाकिस् पिछ ?
आमि त मत्युर गुप्त प्रेमे
रबो ना घरर कोने घमे ।
आमि चिर यौवनेरे पराइब माला,
हात मोर तारिल वरण डाला ।
फले दिब आर सब भार
वाद्धक्यर स्तूपाकार आयोजन ।'

अर मन यात्रा के आनन्द-गान म पूण है आज यह अनन्त आकाश ।
तर रथ पर विश्वकवि गान गा रहा है गान गाते हैं चन्द्र-तारा-सूय—

"ओ र मन
यात्रार आनन्द गाने पूण आजि अनन्त गगन ।
तोर रथ गान गाय विश्व कवि,
गान गाय चन्द्र तारा रवि ।"

ससार म रूप क रूप म जो कुछ अचल या स्थित दिखाई दे रहा है
वास्तव म वह वसा नहा है । जो कुछ रूप है, वह रूप होकर सत्य नहीं
अरूप होकर सत्य है । नाम और रूप बदलते रहते हैं निरन्तर प्रवहमान
है । ये सब-नये अवगुठन हैं पर भीतर की सुन्दरी कोई और ही है । कवि

न एक जगह कहा है—नित्य ही नये नये अवगुंठनों के नाचे चितन बहाना से चुपचाप मैं देखता हूँ एक ही प्रेयसी का मुख चितन चितन रूपों में

कत नव-नव अवगुंठनेर तले
वेखिया छि कत छले
चुपे चुपे
एक प्रेयसीर मुख कत कत रूप ।

पर जो लोग अवगुंठन को ही चरम समझते हैं प्रेयसी के मुख दर्शन के आनन्द से वे सर्वदा वंचित रह जाते हैं। अवगुंठन गौण है प्रेयसी ही मुख्य। इसीलिए कवि 'रूप और अरूप' नामक प्रबन्ध में लिखते हैं—

जो लोग अनन्त की साधना करते हैं जो सत्य की उपलब्धि करना चाहते हैं उन्हें बार-बार यह बात सोचनी होती है कि चारों ओर जो कुछ देख और जान रहे हैं वही चरम सत्य नहीं है स्वतंत्र नहीं है किसी भी क्षण में वह अपने को अपने-आप पूर्ण रूप से प्रकाश नहीं कर रहा है। यदि ऐसा वे करते होते तो सभी स्वयंभू स्वप्रकाश होकर स्थिर हो रहते। ये जो अन्तहीन गति के द्वारा अन्तहीन स्थिति का निर्देश करते हैं वही हमारे चित्त का चरम आश्रय और चरम आनन्द है।

अतएव आध्यात्मिक साधना कभी भी रूप की साधना नहीं हो सकती। वह समस्त रूप के भीतर से चंचल रूप के बंधन का अतिक्रम करके ध्रुव सत्य की ओर चलने की चेष्टा करती है। कोई भी इन्द्रियगोचर वस्तु अपने को ही चरम या स्वतंत्र समझने का भाव करती है साधक उस भान के आवरण को भेद करके ही परम पदार्थ को देखना चाहता है। यदि इस नाम रूप का आवरण चिरंतन होता तो वह भेद नहीं कर सकता था। यदि ये अविश्रान्त भाव से नित्य प्रवहमान होकर अपने-आप ही सीमा को तोड़ते न चलते तो इन्हें छोड़कर और किसी बात के लिए मनुष्य के मन में किसी चिन्ता के लिए स्थान भी न होता—तब इन्हें ही सत्य समझ कर हम निश्चिन्त हो बैठ रहते—तब विज्ञान और तत्त्वज्ञान इन सारे अचल प्रत्यक्ष सत्यों के भीषण शृंखल में बंधकर एकदम मूक और मूर्छित हो

रहते। इसके पीछे और कुछ भी न देख सकते। किन्तु ये सब खण्ड वस्तु समूह केवल चल ही रहे हैं कतार बाँधकर खड़े होकर रास्ता नहीं रोके हुए हैं, इसीलिए हम अखण्ड सत्य का अक्षय पुण्य का संधान पाते हैं।

शिल्प की साधना के विषय में भी यही बात है। इस साधना में मनुष्य का चित्र अपने को बाहर रूप देता है और उस रूप के भीतर से पुनः अपने-आपको देख पाता है।

इसीलिए शिल्प-साहित्य में भावव्यंजना का इतना आदर है। इस भावव्यंजना के द्वारा रूप अपनी एकान्तव्यक्तता को यथासम्भव परिहार करता है इसीलिए अपने को अव्यक्त की ओर विलीन कर देता है। अतएव मनुष्य का हृदय रूप में प्रतिहत नहीं होता। राजोद्यान का सिंहद्वार कितना ही अभ्रभेदी क्यों न हो उसकी शिल्पकला कितनी भी सुन्दर क्यों न हो वह यह नहीं कहता कि हममें आकर ही सारा रास्ता समाप्त हो जाता है। असल गन्तव्य स्थान उस अतिक्रम करने के बाद ही है यही बात बताना ही उसका फर्ज है। इसीलिए तोरण कठिन पत्थर से कितना भी मजबूत क्यों न हो वह अपने में अनेक फाँक रखता है। असल में इस बाकी स्थान को प्रकट करने के लिए वह खड़ा हुआ है। वह जितना है उसमें वह अधिक नहीं है। अपने उस नहीं अंश को यदि वह एकदम भर दे तो सिंहद्वार का पथ बिल्कुल बन्द हो जाय। ऐसी अवस्था में उसके समान निष्ठुर बाधा दूसरी नहीं हो सकती। उस समय वह दीवार हो उठता है और जो लोग मूढ़ हैं वे समझते हैं यही देखने की चीज है इसके पीछे और कुछ भी नहीं है। पर जो लोग पता रखते हैं वे उसे एक अत्यन्त स्थूल मूर्तिमान बाहुल्य समझ कर अन्यत्र रास्ता खोजने निकलते हैं। रूपमात्र एक ही सिंहद्वार हैं। रूप अपने खालीपन को लेकर ही गौरव कर सकता है। यदि वह (रूप) अपने को ही निर्देश करता है तो धोखा देता है। रास्ता दिखाकर ही वह सच बोलता है। वह भूमा को दिखायगा आनन्द को प्रकाशित करेगा—क्या शिल्प साहित्य में और क्या जगत्-सृष्टि में सर्वत्र उसका यही एक काम है।

तरववात ममघन म वछ वम वनिन न्ना है पर उस मुविधा यह है कि हजारा वर्षो म वह विचार आगनु न्मिरात्त चला हुआ है रवान्द्रनाथ के मान को यह गविधा नना मिन्ना । न्प जा निरतर परिवननशील है सीमा का काय करता है। असीम गवन्ना रूम मामा का पान के न्निए व्याकुल है और मामा असाम के रास्ते पर आँग बिछाय हुए है । मामा और असीम का यह पारस्परिक आकषण ही जगत का आनन्द है। कवि कहते हैं हे भुवन मैंने जब तक तुम्हे प्रम न किया था तब तक तुम्हारा प्रकाश खोज खोज कर अपना सारा धन न पा सका । तब तक निखिल आकाश हाथ म प्रदीप लेकर शून्य म उसका राह देख रहा था--

हे भवन

आमि यत क्षण

तोमार ना बस छिन भालो

ततक्षण तव आलो

खज खज पाय नाइता र सब धन ।

तत क्षण

निखिल गगन

हात निय दीप ता र शून्य शून्य

छिल पथ चय ।

मेरा प्रम गान गाता हुआ आया न जाने क्या कानाफूसी हुई उसने तुम्हारे गले म अपनी माला डाल दी। मुग्ध आखो से हसकर तुम्ह उसने गुप्त रूप से कुछ दिया है जो तुम्हारे गोपन हृदय म तारा की माला मे चिर दिन तक गुथा रहेगा --

मोर प्रम एल गान गय,

कि य हल' कानाकानि

दिल से तोमार गले आपन गलार माला खानि

मग्ध चक्ष हेसे

तोमार से

गोपन दिये छे पिछू या तोमार गोपन हृदये,
तारार मालार माझे चिर दिन र'ब गाथा ह'ये।

यह रूपवान ससीम जगत असीम आत्मा को खोज रहा था पाकर धन्य हो गया। जगत और आत्मा में कितना पार्थक्य है? एक सीमा है, एक असीम; एक रूप है, एक अरूप; एक स्थितिशील है, एक गतिशील— फिर भी एक दूसरे के लिए व्याकुल हैं।

१२

महान गायक रवीन्द्रनाथ

कविवर रवीन्द्रनाथ न दो हजार स ऊपर गान लिख हैं। इन गाना को उन्होन स्वय सुर और ताल म बाधा है। इनके अतिरिक्त उनकी कविताओ म बहुत अधिक सख्या एसी कविताओ की है जो वस्तुत गय पद हैं। गान क माध्यम से ही उन्होन परम सत्य का साक्षात्कार किया था। उन्होन एक स्थान पर लिखा था कि स्वर का वाहन हम किसी पर्दे की ओट म सत्य क लोक म वहन कर ले जाता है। वहाँ पदल चल कर नही जाया जा सकता। वहा की राह किसी न आँखो नही देखी। इसका मतलब यह है कि गद्य के माध्यम से हम केवल प्रयोजना की दुनिया म चक्कर लगाते रहते हैं लेकिन सगीत और छद हमें एक प्रकार का पख देते हैं जिनके द्वारा हम अज्ञात सत्य तक अनायास पहुच जाते है। एक कविता म उन्होन छद को पख कह कर इसी बात को स्पष्ट किया है। अपन अनक गान काव्य नाटक आदि मे उन्होन सगीत की इस महिमा का उद्घोष किया है। यद्यपि सुर को वह बहुत ही महत्वपूर्ण साधन मानते हैं तथापि इसका यह अथ नही है कि उनक गाना म अथ-तत्त्व का गाम्भीय कुछ कम है। यद्यपि उनके लिख गाना का पूरा सौदय तभी अनुभव किया जा सकता है जब कि वे उनके दिय हुए सुरो म ही गाए जाए तथापि जो पाठक उनके गय रूप को प्राप्त करन का अवसर नही पा सके वे भी केवल काव्य दृष्टि से देखकर कुछ न कुछ रस अवश्य पा सकते हैं। रवीन्द्रनाथ की यह विशपता है कि उनके गाना म अथ गाम्भीय सदा बना रहता है। उन्होन स्वय बताया है कि उनके आरम्भिक गान भावावेश प्रधान हैं जब कि परवर्ती गाना म सौदय बाध का तत्व विशप रूप से परिस्फुटित हुआ

है। वस्तुत रवीन्द्रनाथ ने समस्त विश्व में एक प्रकार का अदृश्य निःशब्द संगीत सुना। कोई अदृश्य गायक न जाने किस पर्दे के अन्तराल में बैठा हुआ गान गा रहा था जो इस दृश्यमान जगत में स्पर्श-वर्ण रंग आदि बहुविचित्र रूपों में गोचर हो रहा है। अपनी एक कविता में उन्होंने सृष्टि प्रवाह को गतिशील बनाने वाली शक्ति को सम्बोधन करते हुए कहा है—

हे भैरवी, हे वैरागिणी!
तुम जो चलीं उद्देश्यहीन अबाध,
यह गति ही तुम्हारी रागिणी निःशब्द मोहन गान!

इसी निःशब्द मोहन गान के ताल से ताल मिलाता हुआ कवि मनोहर गीत की सृष्टि करता है। जो इसके अनुकूल है वही सुन्दर है, जो प्रतिकूल है वह कुरूप है। अपनी 'तपोभंग' नामक कविता में उन्होंने महाकाल को सम्बोधन कर कहा है— 'हे महाकाल, उस दिन तुमने जिस उन्मत्त नृत्य से वन-वन को मुखरित किया उसी नृत्य के छन्द और लय में मैं प्रति क्षण संगीत रचा करता हूँ, ताल के साथ ताल मिलाता हुआ।'

रवीन्द्रनाथ ने किसी बड़े उस्ताद की शागिर्दी करके विधिवत शास्त्रीय संगीत की शिक्षा नहीं प्राप्त की, परन्तु समृद्ध परिवार में संगीत का बड़ा ही मोहन वातावरण था। रवीन्द्रनाथ में ग्राहिका शक्ति बड़ी तीव्र थी। उन्होंने अनेक शक्तिशाली गायकों के गायन से रस-संग्रह किया और संगीत की दुनिया में बिल्कुल अभिनव प्रयोग किया। जिन लोगों को रवीन्द्र संगीत को शास्त्रीय दृष्टि से परखने की दृष्टि मिली है वे बताते हैं कि उनके आरम्भिक गानों में शास्त्र सम्मत राग ताल का ही अधिक प्रयोग है। ध्रुपद के चार अंगों का उन्होंने विशेष रूप से प्रयोग किया है और उनके परम्परा प्रचलित भावगम्भीर अनाडम्बर रूप को अधिक प्रभावशाली बनाया है। युवावस्था में उन्हें अपनी जमींदारी का काम काज देखने के लिए शिलाईदह जाना पड़ा जो पद्मा नदी के तीर पर बसा हुआ है। यहाँ आकर रवीन्द्रनाथ साधारण जनता को निकट से देखने का अवसर पा सके। इस सम्पर्क ने एक ओर जहाँ उनकी कहानियों एवं कविताओं को नई शोभा और श्री

से सम्पन्न किया वहाँ दूसरी ओर उनके गानों को भी लोक संगीत ने प्रभावित किया। समय बीतने के साथ रवीन्द्रनाथ ने विभिन्न स्वरों के समंजस मिश्रण का भी प्रयत्न किया और आगे चलकर तो उन्होंने देश के विभिन्न भागों और विभिन्न स्तरों में प्रचलित अनेक प्रकार की गीति-पद्धतियों से अपने गान को समृद्ध किया। जानकार लोग बताते हैं कि अपने हजारों गानों में उन्होंने संगीत की एक नई ही दुनिया उद्घाटित की है जो उनके काव्य में प्रयुक्त छन्दों की भाँति ही विचित्र और नवीन है। संगीत उनके काव्यों और नाटकों में भी बहुविचित्र स्वरों में मुखरित हुआ है। अनेक नए तालों और मिश्र-स्वरों के प्रयोग के कारण विशुद्ध शास्त्रीय पद्धति के संगीतज्ञ उनसे विरक्त भी हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे पुराने ढंग के अलंकारी छन्द रसवादी उनकी कविताओं से बिदकते हैं। लेकिन इस विषय में दो मत नहीं हो सकते कि रवीन्द्रनाथ ने बहु विचित्र स्वर-ताल से संगीत की एक नई दुनिया ही सृष्ट की है।

रवीन्द्रनाथ संगीत को पावनकारी शक्ति के रूप में देखते हैं। विश्व रचना का मूल स्वर ही संगीत है। समष्टि जगत का यह छन्द और ताल व्यष्टि जगत में जीवन के बहुविचित्र रूपों में प्रकट हो रहा है। संगीत वस्तुतः जीवनधारा ही है। जहाँ कहीं जड़ता है, स्तब्धता है, सड़न है, जीर्णता है, वह विराट जीवन धारा से विच्छिन्न होने का परिणाम है और इसीलिए मूल सृष्टिधारा के अनुकूल चलने वाली संगीत धारा में भी विच्छिन्न है। व्यक्ति में प्रकट होने वाला मोहन संगीत समष्टिगत जीवन प्रवाह के अनुकूल होने के कारण ही रमणीय है। इसीलिए वह जीर्णता की सड़न को और जड़ की स्तब्धता को झाड़ देता है और पद पद पर नवीन जीवनी शक्ति का बल देता रहता है। एक गान में वह कहते हैं— मेरा जो कुछ भी पुराना-धुराना और निर्जीव है उसके प्रत्येक स्तर पर बहा बहा दो अपने स्वर की धारा को। दिन रात इस जीवन की प्यास पर और भूख पर झड़ती रहे तुम्हारे स्वर की वह धारा सावन की झड़ी की तरह। इस प्रकार सृष्टि की सारी जीर्णता, जड़ता और असफलता के मूल में समष्टिगत

सगीत के अनवरत बहन वाली जीवन धारा का विच्छेद ही रहा करता है। मनुष्य क्षुद्र स्वार्थों की लपट म आ कर व्यथ ही परेशान हुआ रहता है। उसका भी कारण यही है कि उस सगीत की धारा का साक्षात्कार नहीं हुआ। यदि मनुष्य उस सगीत धारा का साक्षात्कार पा सके तो फिर फूल पल्लव नदी निर्झर सब उसके सुर म सुर मिलान लगेंगे और उसके प्रत्यक छन्द म आलोक और अधकार स्पन्दित होन रहग। एक गान म उन्होन कहा है—भाई मेर स्थल म जल म लोक-लोक म सवत्र तेरा पुकार हो रही है। तू मग और दु ख म लाज और भय म जो गान गाएगा तेरे उस प्रत्यक स्वर म फूल और पल्लव नदी और निझर अपना सुर मिलाएग और तेर प्रत्यक छन्द से आलोक और अधकार स्पन्दित होग।

> स्थले तोर आछे आह्वान आह्वान लोकालये,
> चिरदिन तुई गाहिवि य गान सुखे-दुख लाजे भए।
> फूल-पल्लव-नदी निझर सुर-सुरे तोर मिलाइब स्वर,
> छन्द य तोर स्पन्दित हवे आलोक अधकार।

सब समय विश्व-ताल के साथ मिला कर चलना नहीं हो पाता। मनुष्य की व्यथा वही है जहा उसकी गति विश्वव्यापी सगीत के साथ समानान्तर होकर नहीं चलती। छन्द टूट जाता है राग विकृत हो उठता है तुक नहीं मिलता। पूजाहीन दिवस और सवाहीन रातो की व्यथता इसी छन्दोभग का फल है।

कवि न अपन जीवन देवता को सम्बोधित करते हुए कहा था। (जिसे हिन्दी म इस प्रकार कहा जा सकता है)—

> बधु तुम क्या देखते हो मम म मेरे गडा कर नयन अपने?
> क्या क्षमा कर दीं सभी त्रुटियाँ
> विकृतियाँ, स्खलित गतिया इस अजायन की बताओ?
> हाय पूजाहीन कितने दिवस सेवाहीन कितनी रात्रियाँ
> बीतीं, गई किस ओर?
> मेरे साथ, फूलो का मनोरम अघ्य विकसित हो विजन वन

याच कितनी बार झड़-झड़ कर हुआ
यहाय !—
तुमन जो कसे थ तार वीणा के किसी मनहरण सुर क लिए
बारबार शिथिल श्लथ हो हो पर उतर व गए !
हे कवि कहाँ है सामर्थ्य मश म गा सकू वह रागिणी जो
रची तुम न भव्य !

रवीन्द्रनाथ न अपनी कविताओ का विषय इस देश म पुरान और नय वातावरण म चुना है। पुराना कथाओ का उन्हान नई ज्योति से दाप्त किया है। उनकी प्रतिभा मुख्य रूप से गीतात्मक थी। यह नहा है कि उन्हान ववतय विषय का नाए छन्द और नए स्वर का वाना दिया है बल्कि एसा जान पडता है कि वक्तव्य का कोई निजी छन्द था जो उनके द्वारा स्वय स्फुट हो उठा है। वक्तव्य की अन्तर्विहित ममवाणी न ही मानो छन्द स्वर और ताल की निजी अभिव्यक्तिया का आश्रय लिया है। यही कारण है कि रवीन्द्रनाथ की कविताओ और गानो म अथ और छन्द एक दूसरे से एसे घुल मिल मिलते हैं कि उन्हें अलग करना कठिन हो जाता है। आवेग की तीव्रगति अनुभूतियो का सहज प्रकाश और परम्परा प्राप्त अर्थों का दृढ मूल भाव सगीत के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त होते हैं कि सहृदय पाठक को लगता है कि य इसी प्रकार की अभिव्यक्ति ही खोज रहे थ। किसी अन्य प्रकार का अभिव्यक्ति उन्हे मिलती तो उसका सौदय फीका पड जाता। अथ का इस प्रकार छन्द के साथ घुल मिल जाना इस बात का सूचक है कि वे एक हा मूल स्वर के दो रूप हैं। एक के बिना दूसरा रह नहा सकता था। अथ शब्द म और शब्द अथ म विश्राति खोज रहा है। निझर का स्वप्न भग नामक आरम्भिक काल (१८८२) की जिस कविता को रवीन्द्रनाथ का काव्य प्रतिभा को मोड दन वाला नया स्वर कहा जाता है वह वस्तुत सगीत की वेगवती उपलब्धि की सूचनामात्र है। एसा लगता है कि तरुण कवि को पहली बार स्पष्ट रूप से अनुभव हुआ है कि सुदूर दिगन्त पार स कोई सगीत पुकार रहा है पर्यायो का

मेंरव पुष्पा का उल्लास, वाय का रम-बपन उपा का रागारुण मान्तग सूय किरणा का म्वप्नमाचन प्ररणा उमा महामगीत की दूर की तान का अस्पष्ट प्रतियाँ हैं। पूरा सनाई नहा दे रहा है क्याकि बन्धना और आवरणा का व्यवधान है जितना सुनाई न रन्ा है वह पूरे क हृदयगम करन का पावल इगित मात्र है—

आज जान क्या हुआ जग उठ मर प्राण,
एसा लग रहा मानो महासागर घुमड कर गा रहा जो गान
दूर दिगन्त के उस पार, उस को सन रहा हू !
अर, चारा ओर मरे दिख रहा कसा भयावह घोर कारागार—
इसन्ा तोड चक्नाचूर कर दे दे प्रचण्डापात वारवार।
हाय रे, यह आज कसा गान गाया पक्षिया न,
आ गई रवि की किरण द्युतिमान।

अग-जग म व्याप्त इस महासगात ने कवि को निरन्तर चालित और प्ररित किया है। उमा क ताल स ताल मिलाता हुआ कवि अनायाम छन्दा वर्णों रगा भावा का मोहक समार रच सका है।

रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीय गान

रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा बहुमुखी थी परन्तु प्रधान रूप से वे कवि थे। कविता में भी उनका झुकाव गीत कविता की ओर ही था। उन्होंने गान में आनन्द पाया सुर के माध्यम से परम सत्य का साक्षात्कार किया और समस्त विश्व में अखण्ड सुर का सौन्दर्य व्याप्त देखा। एक प्रसंग में उन्होंने कहा था— गान के सुर के आलोक में इतनी देर बाद जिस सत्य को देखा। अन्तर में यह गान की दृष्टि सदा जाग्रत न रहने से ही सत्य मानो तुच्छ होकर दूर खिसक पड़ता है। सुर का वाहन हमें उसी पर्दे की आड़ में सत्य के लोक में वहन करके ले जाता है। वहाँ पैदल चलकर नहीं जाया जाता वहाँ की राह किसी ने आँखों नहीं देखी। रवीन्द्रनाथ का सम्पूर्ण साहित्य संगीतमय है। उनकी कविताएँ गान हैं परन्तु उनके गान केवल ताल-सुर के वाहन नहीं हैं अर्थ गाम्भीर्य और शब्दमाधुर्य के भी आगार हैं। जगत में जिस प्रकार उनकी कविताओं में संगीत का रस है उसी प्रकार बल्कि उससे भी अधिक उनके गानों में कवित्व है। सुर से वियुक्त होने पर भी उनके गान प्रेरणा और स्फूर्ति देते हैं। उन्होंने सहस्रों गान लिखे हैं। ये गान गाए जाने पर ही ठीक-ठीक समझे जा सकते हैं परंतु फिर भी उनकी छाप के अक्षरों में पढ़ने पर भी कुछ-न-कुछ रस अवश्य मिलता है क्योंकि उनका अर्थगाम्भीर्य वैसा ही बना रहता है। रवीन्द्रनाथ सुर की धारा में एक अपूर्व पावनी शक्ति अनुभव करते हैं। अपने परमाराध्य को पुकार कर वे कहते हैं

तुम्हारे सुर की धारा मेरे मुख पर और वक्षस्थल पर सावन की पानी के समान झरे पड़े। उदयकालीन प्रकाश के साथ वह मेरी आँखों

पर झड़, निशीथ के अन्धकार के साथ वह गंभीर धारा के रूप में मेरे प्राणों पर झड़े दिन रात वह इस जीवन के सुखों और दुःखों पर पड़ती रहे। तुम्हारे मेघों की धारा सावन की धड़ों के समान बरसती रहे। जिस शाखा पर फल नहीं लगते फूल नहीं खिलते उस शाखा को तुम्हारा यह बादल हवा जगा दे। मेरा जो कुछ भी पत्ता पुराना और निर्जीव है उसके प्रत्येक स्तर पर तुम्हारे मेघों की धारा पड़ती रहे दिन रात इस जीवन की भूख पर और प्यास पर वह सावन की धारा के समान बरसती रहे—

श्रावणेर धारार मतो पडुक झरे पडुक झरे,
तोमारि सुरटि आमार मुखेर' परे, बुकेर परे।
पूरवेर आलोर साथे झडुक प्राते दुइ नयाने–
निशीथेर अंधकारे गॅभीर धारे झडक प्राणे
निशिदिन एइ जीवनेर सुखेर परे दुखेर' परे
श्रावणेर धारार मतो पडुक झरे पडुक झरे॥
ये शाखाय फुल फोटे ना फल धरे ना एकेबारे
तोमारि बादल वाये दिक जागाय सेइ शाखारे।
या किछु जीर्ण आमार दीर्ण आमार जीवनहारा
ताहारि स्तरे स्तरे पडुक झरे सुरेर धारा
निशिदिन एइ जीवनेर तृषार' परे भुखेर' परे
श्रावणेर धारार मतो पडुक झरे पडुक झरे॥

इस प्रकार सुर की धारा रवीन्द्रनाथ की दृष्टि में समस्त जीर्णता बन्धनता असफलता और क्षुद्र प्रयोजनों को बहाकर मनुष्य को सहज सत्य के सामने खड़ा कर देती है। निम्नलिखित संगीत ऐसा ही वस्तु है।

यह युग भारतवर्ष में राजनैतिक जागरण का युग है। रवीन्द्रनाथ ने किसी जमाने में राजनैतिक आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था परन्तु बहुत शीघ्र ही उन्होंने देखा कि जिन लोगों के साथ उन्हें काम करना पड़ रहा है उनकी प्रकृति के साथ उनका मेल नहीं है। रवीन्द्रनाथ अन्तर्मुख साधक थे। हल्ला-गुल्ला करके भीड़ के सामने

१३

रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीय गान

रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा बहुमुखी थी परन्तु प्रधान रूप से वे कवि थे। कविता में भी उनकी स्वाभाविक गति कविता की ओर ही थी। उन्होंने गान में आनन्द पाया, सुर के माध्यम से परम सत्य का साक्षात्कार किया और समस्त विश्व में अखण्ड सुर का सौन्दर्य व्याप्त देखा। एक प्रसंग में उन्होंने कहा था— गान के सुर के आलोक में इतनी देर बाद जैसे सत्य को देखा। अन्तर में यह गान की दृष्टि सदा जाग्रत न रहने से ही सत्य मानो तुच्छ होकर दूर खिसक पड़ता है। सुर का वाहन हमें उसी पर्दे की आड़ में सत्य के लोक में वहन करके ले जाता है। वहाँ पैदल चलकर नहीं जाया जाता, वहाँ की राह किसी ने आँखों नहीं देखी। रवीन्द्रनाथ का सम्पूर्ण साहित्य संगीतमय है। उनकी कविताएँ गान हैं परन्तु उनके गान केवल ताल-स्वर के वाहन नहीं हैं, अर्थ गाम्भीर्य और शब्दमाधुर्य के भी *आगार* हैं। असल में जिस प्रकार उनकी कविताओं में संगीत का रस है उसी प्रकार वरन् उससे भी अधिक उनके गानों में कवित्व है। सुर से वियुक्त होने पर भी उनके गान प्रेरणा और स्फूर्ति देते हैं। उन्होंने सैकड़ों गान लिखे हैं। *ये गान गाए जाने पर ही ठीक-ठीक समझे जा सकते हैं* परन्तु फिर भी उनको छापे के अक्षरों में पढ़ने पर भी कुछ न कुछ रस अवश्य मिलता है क्योंकि उनका अर्थगाम्भीर्य वहाँ भी बना रहता है। रवीन्द्रनाथ सुर की धारा में एक अपूर्व पावनी शक्ति अनुभव करते हैं। अपने परमाराध्य को पुकार कर वे कहते हैं

तुम्हारे सुर की धारा मेरे मुख पर और वक्ष-स्थल पर सावन की झड़ी के समान झरे पड़े। उदयकालीन प्रकाश के साथ वह मेरी आँखों

पर इस निशीथ के अधकार के साथ वह गभीर धारा के रूप म मेरे प्राणो पर झड़ दिन रात वह इस जीवन के सुखो और दुखो पर पड़ती रहे। तुम्हारे मेघ की धारा सावन की झड़ी के समान पड़ती रहे। जिस शाखा पर फल न लगते फूल न हो किन्तु उस शाखा को तुम्हारा यह बादल-हवा जगा दे। मेरा जो कुछ भी फटा पुराना और निर्जीव है उसके प्रत्येक स्तर पर तुम्हारे मेघ की धारा बरसती रहे दिन रात इस जीवन की भूख पर और प्यास पर वह सावन की धारा के समान झड़ती रहे --

श्रावणेर धारार मतो पडुक झरे पडुक झरे,
तोमारि सुरटि आमार मुखेर' परे, बुकेर परे।
पूरबेर आलोर साथ पडुक प्राते दुइ नयाने--
निशीथेर अधकारे गभीर धारे पडुक प्राणे
निशिदिन एइ जीवनेर सुखेर' परे दुखेर' पर
श्रावणेर धारार मतो पडुक झर पडुक झर॥
ये शाखाय फुल फोटे ना फल धरे ना एकेबारे
तोमारि बादल बाये दिक जागाये सेइ शाखारे।
या किछु जीर्ण आमार दीर्ण आमार जीवनहारा
ताहारि स्तरे स्तरे पडुक झरे सुरेर धारा
निशिदिन एइ जीवनेर तृषार परे भुखेर' परे
श्रावणेर धारार मतो पडुक झरे पडुक झरे॥

इस प्रकार मेघ की धारा रवीन्द्रनाथ की दृष्टि में समस्त जीर्णता व्यथता असफलता और क्षुद्र प्रयोजनो को बहाकर मनुष्य को सहज सत्य के सामने खड़ा कर देती है। निस्सन्देह सगीत ऐसी ही वस्तु है।

यह युग भारतवर्ष म राजनीतिक जागरण का युग है। रवीन्द्रनाथ ने किसी जमाने में राजनीतिक आन्दोलन म सक्रिय भाग लिया था परन्तु बहुत शीघ्र ही उन्होने देखा कि जिन लोगो के साथ उन्हे काम करना पड़ रहा है उनकी प्रकृति के साथ उनका मेल नहीं है। रवीन्द्रनाथ अतर्मुख साधक थे। हल्ला गुल्ला करके ढोल पीट कर गला फाड के

यदि तेरी पुकार सुनकर कोई न आए तो तू अकेला ही चल पड़। अरे ओ अभागे यदि तुझसे कोई बात न करे यदि सभी मुँह फिरा लें सब (तेरी पुकार से) डर जाएँ तो तू प्राण खोल कर अपने मन की वाणी अकेला ही बोल। अरे ओ अभागे यदि सभी लौट जायें यदि कठिन मार्ग पर चलते समय तेरी ओर कोई फिर कर भी न देखे तो तू अपने रास्ते के काँटों को अपने खून से लथपथ चरणों द्वारा अकेला ही रौंदता हुआ आगे बढ़। अरे ओ अभागे यदि तेरी मशाल न जले और आँधी तूफान और मेघ भरी अंधेरी रात में (तुझे देख कर) सब लोग दरवाजा बंद कर लें तो फिर अपने को जला कर तू अकेला ही हृदय पंजर जला। यदि तेरी पुकार सुनकर कोई तेरे पास न आए तो फिर अकेला ही चलता चल अकेला ही चलता चल —

यदि तोर डाक शुने केउ ना आसे
तबे एकला चलो रे ।
एकला चलो एकला चलो
एकला चलो रे ॥
यदि केउ कथा ना कय—
(ओरे ओरे ओ अभागा !)
यदि सबाइ थाके मुख फिराय,
सबाइ करे भय—
तबे पराण खुले
ओ तुइ मुख फुटे तोर मनेर कथा
एकला बलो रे ॥
यदि सबाइ फिरे याय—
(ओरे ओरे ओ अभागा !)
यदि गहन पथ यावार काले
केउ फिरे ना चाय—
तबे पथेर काँटा

ओ तुइ रक्तमाखा चरण तले
एकला दलो रे ॥
यदि आलो ना धरे—
(ओरे ओरे ओ अभागा !)
यदि झड़ बादले आँधार राते
दुयार देय घर—
तब वज्रानले
आपन बुकेर पांजर ज्वालिये निय
एकला ज्वलो रे ॥
यदि तोर डाक शुने केउ ना आसे,
तबे एकला चलो रे।
एकला चलो, एकला चलो,
एकला चलो रे ॥

सत्यमार्ग के अनुसंधित्सुओं के लिए इतने स्फूर्तिदायक गान कम ही लिखे गए होंगे। रवीन्द्रनाथ ऐसे साथियों को भार मात्र समझते थे जिनको अपने लक्ष्य पर विश्वास नहीं है। ऐसे लोगों को जुटाकर केवल संख्या गिनाने से कोई लाभ नहीं। जब विपत्ति से सामना पड़ेगा तभी ऐसे साथी बोझ हो जायेंगे वे खुद पीछे हटेंगे और दूसरों को भी परेशान करेंगे। साधना के क्षेत्र में—चाहे वह स्वदेश-सेवा की साधना हो या परम प्राप्तव्य को प्राप्त करने की—अधकचरे साथी बाधा ही हैं क्योंकि साधना का क्षेत्र विपत्तियों से जूझने का क्षेत्र है। घरफूंक मस्त लोग ही इस रास्ते पर कदम उठा सकते हैं। कबीरदास ने कहा था कि मैं अपना घर जलाकर हाथ में लुकाठा लिए बाजार में खड़ा हूँ जो अपना घर फूंक सके वही हमारे साथ चले—

कबिरा खड़ा बजार मे लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूके आपना, चले हमारे साथ॥

यदि साधना के साथी मोहवश अपना सर्वस्व त्याग देने में ज़रा

ना गिगव तो पता निन्ति है। इमालिए रवान्द्रनाथ न स्वम्न-सवा म माधवा गा पुकार वर गाया है

यदि भाई तुम कछ चिन्ता फिक है तो तू लौट जा। यदि तर मन में वहा डर हो तो मैं नाम म ही मना करता हू कि इस रास्त न च । यदि तर शरीर में नाम स्फूर्ती रहगी तो तू पग पग पर रास्ता भूल जायगा यदि कम्प तरा हाथ काँप गया तो मशाल वझा कर तू सबका रास्ता अधकारमय कर दगा। यदि तरा मन कछ छाड़ना न चाह और तू अपना बाझा बराबर बढ़ाता ही गया तो इस कठिन रास्त को मार तू बर्दाश्त नहीं कर सकेगा। यदि तर मन म अपन आप (भीतर म) आनन्द नहा जगता रहगा तो तब पर-तब करक तू सब कछ तहस नहस कर देगा। तो भाई यदि तुझ कछ चिन्ता फिक है तो तू लौट जा।

यदि तोर भावना थाके
फिर या ना—
तव तुइ फिर या ना।
यदि तोर भय थाके तो
करि माना॥
यदि तोर घूम जडिय थाके गाय
भुलिबे-य पथ पाय पाय
यदि तोर हाथ काँप तो निबिये आलो,
सबाय क रवि काना॥
यदि तोर छाड़ते किछ ना चाहे मन
करिस भारी बोझा आपन
तव तुइ सन्ते कभु पारिस न रे
विषम पथर टाना॥
यदि तोर आप ह ते अकारणें
सुख सदा ना जाग मन

तबे केवल, तर्क क' रे सकल कथा
क' रबि खाना-खाना ॥
यदि तोर भावना थाक० ॥

हो सकता है कि इस प्रकार अकेले ही सचाई के मार्ग पर चलने वाले को लोग शुरू शुरू में पागल कहने लगें। शुरू शुरू में किस सत्पुरुष को लोगों ने पागल नहीं समझा है? किस महापुरुष ने निर्यातन नहीं सहा है? रवीन्द्रनाथ ने कहा

'जो तुझे पागल कहे उसे तू कुछ भी मत कह। आज जो तुझे कैसा कुछ समझ कर धूल उड़ाता है, वही कल प्रातःकाल हाथ में माला लिए तेरे पीछे-पीछे फिरेगा। आज चाहे वह मान करके गद्दी पर बैठा रहे, किन्तु कल (निश्चय ही) वह प्रेमपूर्वक नीचे उतर कर तुझे अपना माथा नवाएगा' —

य तोरे पागल बले
ता रे तुइ बलिसने किछु।
आजके तोरे केमन भेवे
अंग ये तोर धूलो देबे
काल से प्राते माला हाते
आसबे रे तोर पिछु पिछु ॥
आजके आपन मानेर भरे
थाक से ब' से गदिर' परे
काल के प्रेमे आसबे नेमे
क' रबे से ता' र माथा नीचु ॥

सचाई होना चाहिए। सत्य प्रकाशधर्मा है वह छिपा कर रोका नहीं रखा जा सकता। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो समझते हैं कि प्रत्येक नया विचार सनातन प्रथा को ध्वस्त कर देगा संस्कृति को रसातल में पहुँचा देगा। इतिहास साक्षी है कि ऐसा करने वालों का प्रयत्न कभी सफल नहीं हुआ। मनुष्य ने इतिहास से कितना कम सीखा है। सम्पत्ति-मद

स मत ागि दा न्नि आग था बात भी ा दग पात । व अपनी शक्ति पर जितना भरोसा रखत हैं उतना आगा भी उन पर नहीं रखत जिनकी वणमात्र शक्ति पाकर व अपन को शक्तिशाली समझा करत हैं। व समझत ह कि उनक हुक्म पर ही समार धारा रुक जायगी । व पद पद पर ऐसा कभी नहीं हो सकता रूकर प्रयत्न प्रगति का विरोध करत हैं । लकिन अनादिकाल म यह सर्वविदित सत्य है कि जिस एग सम्मत शक्तिशाली लोग असभव कहा करत हैं वह वस्तुत असभव नहीं है।

रइलो य े रावले कार
हुकुम तोमार फ ल्व भव ।
(तोमार) टानाटानि टिक्व ना भाई
र' बार यटा सटा र' व ॥
या खसि ताइ क ते पारो—
गायर जोर राखो मारो—
यार गाय सब व्यथा बाज
तिन या स न सेटाइ स' व ॥
अनक तोमार टाका कड़ि
अनक दड़ा अनक दड़ि
अनक अन्व अनक करी
        अनक तोमार आछ भव ।
भावछो हव तुमिइ या चाओ
जगतटा क तुमिइ नाचाओ
देख व हठात नयन खले
        हय न यटा सेटाओ हव ॥

यह रह गया —ऐसा कह कर तुमन किस बचा लिया ? कब तुम्हारा हुकम तामाल हआ है । अर भाई यह तरा खाच-तान चलगा नहीं जो रहन को है सिर्फ वही रहगा । तुम जो खशी कर सकत हो जबरदस्ती करक रखत रहो और मारत रहो परन्तु जिनक शरीर म सारा व्यथा

रगता है व जो वछ सहत हैं उतना हा चल सकगा। तुम्हारे वहुत रपय-पस हैं टामटाम है वहत हाथी घाड है—दुनिया म तुम्हार वहुत सम्पत्ति है। तुम सोचत हा कि जा तुम चाहाग वहा हागा दुनिया का तुम्ही नचा रहे हा। लेकिन भाई मर, एक दिन तुम आख खोल कर दखाग कि (तुम्हार मत से) जो कभी नहा होता वह भा हो गया।

मगर नि सहाय अकेले निकल पडने में वीरता चाहे कितनी हा क्या वद्धिमाना भा है? अगर मनावाछा पूरी न हुई तो इन लोगा का साथ छाडना किस काम आया? रवान्द्रनाथ लक्ष्य प्राप्ति का इतनी वडा वात नहा मानते। चल दना ही वडी वात है मनावाछा पूरी हुई या नहा इसका हिसाब दुनिादार लाग किया करते हैं। वीर इसकी परवा नहीं करता। सत्य के माग म अग्रसर हो कर टूट जाना भा अच्छा है। जो लाग सत्य के माग म चल रह हैं उनका चलना देखना भी श्रयस्कर है, पर लक्ष्य तक नहा पहुच ता सारी यात्रा ही व्यथ हो गई एसा विचार रवीन्द्रनाथ का पसन्द नहा है। उन्हान गाया है क्या हुआ जो मैं पार नहा जा सका। मरी आशा की नया डूब गई ता हज क्या है वह हवा ता शरीर म लग रही है जिससे नाव चल रही था। तुम लागा की चलती नाव दख रहा हू इसी म क्या कम आनन्द है? हाथ के पास जपन इष्ट मित्र जा कुछ पा रहा हू वही वहत है। हमारा दिन भर क्या यहा काम है कि उस पार की ओर ताकता रहू। यदि कुछ काम है तो प्राण देकर उसे पूरा कर दूगा। मेरा कल्पना वही है जहा मरा कुछ दावा है।

आमार नाइ वा ह लो पारे यावा।
य हावाते चलतो तरी
अगते सेइ लागाइ हावा।
नइ यदि या जमलो पाडि
घाट आछे तो वसते पारि,
आमार आशार तरी डुवलो यदि
देखबो तोदेर तरी बावा।

रा मत्त आग दा नि आग की यात भी न दग पाा। व अपना शक्ति पर जितना भरोसा रखा है उगरा आधा भा उन पर नहीं रखते जितना क्षणमात्र शक्ति पाकर व अपनी शक्तिशाली गमना करते हैं। व समझत हैं कि उनार दूसरा पर हा गगार धारा रुक जायगा। व पग पग पर ऐसा कभी नहीं हो सकता करकर प्रत्यक्ष प्रगति का विरोध करते हैं। लकिन अनादिकाल से यह स्वविदित सत्य है कि जिस एक सम्मत शक्तिशाली लोग असभव करना करते हैं वह वस्तुत असभव नहा है।

रइलो य ते रालले वार
हुक्म तोमार फ उब यब ।
(तोमार) टानाटानि टिकब ना भाई
र' बार यटा सटाइ र' ब ॥
या खसि ताइ क' ते पारो—
गायर जोर राखो मारो—
यार गाय सब व्यथा बाज
तिन या स न सेटाइ स' ब ॥
अनक तोमार टाका कडि
अनक दग अनक दडि
अनक अश्व अनक करी
अनक तोमार आछ भव ।
भावछो हव तुमिइ या धाओ
जगतटा के तुमिइ नाचाओ
देख ब हठात नयन खुले
हय न यटा सेटाओ हब ॥

यह रह गया —ऐसा कह कर तुमने किस वचा लिया ? कब तुम्हारा हुक्म तामील हुआ है। अर भाई यह तरी खाच-तान चलगी नहीं जा रहने को है सिर्फ वही रहगा। तुम जो खुशी कर सकते हो जबदस्ती करके रखते रहा और मारते रहो परन्तु जिनके शरीर म सारी व्यथा

रखना है व जो कुछ सहन है उतना ही चल सकेगा। तुम्हारे बहुत रथ-रस हैं टामटाम हैं बहुत हाथी घोड़ हैं—दुनिया में तुम्हारे बहुत सम्पत्ति है। तुम सोचते हो कि जो तुम चाहोगे वही होगा दुनिया को तुम्हीं नचा रहे हो। लेकिन भाई मेरे, एक दिन तुम आंख खोल कर देखोगे कि (तुम्हारे मत से) जो कभी नहीं होता, वह भी हो गया।

मगर नि सहाय अवल निवल पक्ष में धारता चाहे कितनी ही क्या बुद्धिमानी भी है? अगर मनोवांछा पूरी न हुई तो इन लोगों का साथ छोड़ना किस काम आया? रवीन्द्रनाथ लक्ष्य प्राप्ति को इतनी बड़ी बात नहीं मानते। चल देना ही बड़ी बात है मनोवांछा पूरी हुई या नहीं इसका हिसाब दुनियादार लोग किया करते हैं। वार इसकी परवा नहीं करता। सत्य के मार्ग में अग्रसर हो कर टूट जाना भी अच्छा है। जो लोग सत्य के मार्ग में चल रहे हैं उनका चलना देखना भी श्रेयस्कर है पर लक्ष्य तक नहीं पहुँचे तो सारी यात्रा ही व्यर्थ हो गई, ऐसा विचार रवीन्द्रनाथ को पसन्द नहीं है। उन्होंने गाया है क्या हुआ जो मैं पार नहीं जा सका। मेरी आशा की नैया डूब गई तो हर्ज क्या है वह हवा तो शरीर में लग रही है जिससे नाव चल रही थी। तुम लोगों का चलना नाव देख रहा हूं इसी में क्या कम आनन्द है? हाय रे पार अपने मन गिन जो कुछ पा रहा हूँ वही बहुत है। हमारा दिन भर क्या यही काम है कि उस पार की ओर ताकता रहूं। यदि कुछ काम है तो प्राण देकर उसे पूरा कर लूंगा। मेरी कल्पना वहां है जहां मेरा कुछ दावा है।

आमार नाइ वा ह लो पार यावा।
य हावाते चलतो तरा
अगते सेइ लागाइ हावा।
नइ यदि वा जमलो पाडि
घाट आछे तो बसते पारि
आमार आशार तरा डवलो यदि
देखबो तादेर तरी यावा।

प्राण पथ से उन्ध नइ
आछ यारा बोबार मान ताराओ क्या बयइ बव ॥
समय होला समय होलो
य यार आपन बोझा तोलो
दुख यदि माथाय धरिस से दुख तोर सवइ सव ॥
देवय सवार आराय सेज
घटा यखन उठय बज
एव-साय सव पाग्री यत एक रास्ता लवइ लव ॥
निशिदिन भरसा राखिस० ॥

इस अगण्य विश्वास का साधन एक बार चल पड़न पर लौटता नहा। ना मैं अब नहा लौटूगा नहा लौटगा। मरा नया अब एमी मनोहर हवा की ओर बह चला है मैं अब किनार नहा लगूगा नहा लगूगा! धाग टूटकर छितरा गए हैं तो क्या? मैं उन्ह ही साट-बाट कर जान दे दू? ना अब टूट घर की गूटियाँ बटोर कर मैं बड़ा नहीं रखूगा। घाट का रस्सा टूट गई है तो क्या लगाकर छाती पीट पीट कर रोऊ? अब तो मैं पाल की रस्सी कसकर पकड़ लूगा यह रस्सी टूटने नहीं दूगा नहा दूगा।

आमि फिरबो ना र फिरबो ना आर फिरबो ना र—
(एमन) हावार मख भासलो तरी
(कूले) भिडबो ना आर भिडबो ना र ॥
छडिय गछ सूतो छिड
तन्खूट आज मरबो कि र
(एखन) भांगा घरर कडिय खटि
(बडा) घिरबो ना आर घिरबो ना र ॥
घाटर रसि गछ केट
कांदबो कि ताइ वक्ष फट
(एखन) पालेर रसि ध रबो कसि
(ए रसि) छिडबो ना आर छिडबो ना र ॥

जा रास्ते पर निकल पडा है उसे फिरने का नाम लेना भी ठीक नहा है। नता वहा हो सकता है जो स्वय अपन-आप को हा जीत सक। रवान्द्रनाथ न नाना भाव म इस बात पर जोर दिया है। जो आत्मजयी है जिसन अपन-आप को काबू में रखा है, वही दूसरा को भिड पडने की प्ररणा द सकता है। जो स्वय हार गया जो अपन को ही नहीं सम्हाल सका वह दूसर को क्या बल देगा ?—— अर ओ अभाग यदि तू स्वय ही अवसाद-ग्रस्त होकर गिर पडेगा तो दूसरे किसी को कम बल देगा ? उठ पड खडा हो जा हिम्मत न हार। लाज छोड दे भय छोड दे—तू अपन-आप को हा जीत ले। जब एसा हो जाएगा तब तू जिसे पुकारगा वही तरा पुकार पर चल पडेगा। अगर तू रास्ते म निकल ही पडा है तो अब जो भी हो जसे भी हो लौटने का नाम न ले। और ओ अभागे तू बार-बार पीछे की ओर न देख। भाइ मेरे दुनिया म भय और कहीं नहीं है वह केवल तेरे अपने मन म है। तू सिर्फ अभय चरणो की शरण लेकर निकल पड ——

आपनि अवश होलि तब वल दिबि तुइ कारे।
उठे वाँडा उठे दाडा भडे पडिस ना रे।
करिस ने लाज करिस ने भय,
आपना के तुइ क' रे ने जय
सबाइ तखन साडा देबे डाक दिबि तुइ या रे॥
बाहिर यदि हलि' पथे
फिरिस ने तुइ कोनो मते
थके थेके पिछन पाने
चास ने बार बार।
नाइ-ये रे भय त्रिभवने
भय शुधु तोर निजेर मन
अभय चरण शरण क' रे
बाहिर हये या रे॥

ना भाई तू कमर कसकर तयार हो जा बार-बार हिलना ठीक नहीं है। मेरे दोस्त केवल सोच-सोचकर तू हाथ में आई लक्ष्मी को ठुकराने की गलती न कर। इधर या उधर कुछ एक बात तय कर ले। यह भी क्या कि केवल विचारों के स्रोत पर बहता ही फिरा जाय। बहता फिरना तो मरने जाने से बुरा है। ना भाई एक बार इधर एक बार उधर—यह सब अब बन्द कर। रत्न मिलता हो तो न मिलता हो तो एक बार प्रयत्न तो फिर भी करना ही पड़ेगा। क्या हुआ अगर वह तेरे मन लायक नहीं है तो ? ना भाई तू अब आँसू तो मत गिरा। डोंगी धारा में छोड़ देना हो तो छोड़ दे पशोपेश में पड़कर समय क्या बरबाद कर रहा है ? जब अवसर हाथ से निकल जायगा पयान की बेला बीत जायगी क्या तब तू आँखें खोलेगा ? —

बक बंध तुइ दाँड़ा देलि बारे बारे हलिस न भाई
शुधु तुइ भेबे भेबेइ हातेर लक्ष्मी ठेलिस न भाई ॥
एकटा किछु क' रे न ठिक भेसे फेरा मरार अधिक
बारेक ए दिक बारेक ओ दिक ए खेला आर खेलिस न भाई ॥
मेले कि ना मेले रतन करते तबु हबे यतन
ना यदि हय मनेर मतन चोखेर जलटा फेलिस न भाई ॥
भासाते हय भासा भला करिस ने आर हेला फेला
परिये यखन याबे बेला तखन आँखि मेलिस न भाई ॥

भाई मेरे घर में म्लान मुख देखकर तू गल न जा बाहर अंधकारमय मार्ग देखकर तू विकल न जा जो तेरे मन में है उस प्राणों की बाजी लगाकर भी पाने का प्रयत्न कर सिर्फ इतना ध्यान रख कि उस मनचाही वस्तु के लिए दस भले आदमियों के बीच हल्का न करना पड़े। भाई मेरे रास्ता केवल एक ही है उसे ही पकड़ कर आगे बढ़ चल। जिसे ही आया देख उसके पीछे चल पड़ने की गलती न कर। तू अपने काम में लगा रह जिसे जो कहना हो उसे वही कहने दे ? क्या तू दूसरों की परवाह करता है ? औरों की बात से अपने आपको झुलसाना

ठीक नहा है ना तू किसी की भी परवाह न कर —

घरे मुख मलिन देखे गलिसने—ओरे भाइ,
बाइरे मुख आँधार देखे टलिसने—ओरे भाई ॥
या तोमार आछे मने साधो ताइ परानपणे
शुधु ताइ दशजनारे वलिसने—ओरे भाइ ॥
एकइ पथ आछ ओरे चल सेइ रास्ता ध रे
य आसे तारि पिछ—चलिसने—ओर भाइ ॥
थाक ना तुइ आपन काजे, या खुशी बलुक ना य,
ता निय गायेर ज्वालाय ज्वलिसने—ओरे भाइ ॥

जिम वार न एक वार आगे वढ़न का दृढ़ निश्चय कर लिया जा अपन आप का जात कर अपन समस्त क्षुद्र स्वार्थों को भूलकर अमत क मधान म निकल पडा है उमकी विजय निश्चित है। रास्त म विघ्न आएग पर व दूर हो जायग। वन्धन जकडेंग पर छिन्न हो जायग। वाधाए दृढ निश्चयी का परास्त नही कर सकती। वह दुख म सकट म और आनन्द म चराचर का आन्दोलित करता हुआ उल्लसित करता हुआ आग निकल जायगा। भय नहा है भय नहा है विजय निश्चित है यह द्वार खुल कर ही रहेगा। मैं ठीक जानता हू—तेरे वन्धन की डारी वार वार टट जायगी। क्षण क्षण तू अपन आपको खाकर सम्पत्ति की रात काट रहा ह। अर भाई तुझ बारबार विश्व का अधिकार पाना होगा। स्थल म जल म लोकालय म सवत्र तेरा आह्वान है। तू सम्र और दुख म लाज की हास्त म और भय का हास्त म भा जा गान गाएगा तेर उम प्रत्यक स्वर म फूल पल्लव नदी निझर सुर मिलाएग और तेर प्रत्यक छन्द स आलोक और अधकार स्पन्दित होग। —

नाइ नाइ भय हबे हबे जय खुले जाबे एइ द्वार—
जानि जानि तोर बन्धन डोर छिंड जाबे बारबार ॥
खन खन तुइ हाराये आपना सुप्ति निशीथ करिस यापना
बारे बार तोरे फिरे पते हब विश्वर अधिकार ॥

रयले जे तोर आछे आह्वान आह्वान सारालय
चिरदिन तुइ गाहिबि ये गान सब दुख लाज भय ।
फूल पल्लव नदी निर्झर सुरे सुरे तोर मिलाइबे स्वर
छन्दे ये तोर स्पन्दित हय आलोक अन्धकार ॥

इन गानों के प्रति जो भक्ति है वह क्या किसी स्वार्थ के कारण है? ऐसा परिस्थिति हो जाता है कि हमारा देश इतना सुन्दर है हमारी पृथ्वी ऐसी रत्नगर्भा है हमारा आकाश ऐसा मनोरम है और इसलिए हमारा देश संसार का सर्वश्रेष्ठ देश है परन्तु ये पंक्तियाँ केवल अपने आपको भुलावा देने के लिए गा ली जाती हैं। माता के प्रति पुत्र का प्रेम अपार होता है। मानो मेरा जन्म सार्थक है जो इस देश में पैदा हुआ हूँ, मेरा जन्म सार्थक है जो मैं तुम्हें प्यार कर रहा हूँ। मुझे ठीक नहीं मालूम कि तेरे पास किसी रानी की भाँति कितना धन है कितने रत्न हैं। सिर्फ इतना ही जानता हूँ कि तेरी छाया में आने से मेरे अंग-अंग जुड़ जाते हैं। मैं ठीक नहीं जानता कि और किसी वन में ऐसे फूल खिलते हैं या नहीं जो इस प्रकार अपनी सुगंधि से आकृष्ट कर देते हैं यह भी नहीं जानता कि किसी आसमान में ऐसी मधुर हँसी हँसने वाला चाँद उठता है या नहीं। सिर्फ इतना जानता हूँ कि तुम्हारे प्रकाश में पहले पहल मैंने आँख खोली और वे जुड़ा गई। बस इसी आलोक में आँख खोले रहूँगा और अन्त में इसी आलोक में उन्हें मूँद भी लूँगा। --

सार्थक जनम आमार जन्मेछि ए देशे ।
सार्थक जनम मागो तोमाय भालोबेसे ॥
जानिने तोर धन रतन आछे कि ना रानीर मतन
शुधु जानि आमार अंग जुड़ाय तोमार छायाय एसे ॥
कोन बनते जानिने फूल गन्धे एमन करे आकुल
कोन [illegible] र चाँद [illegible] हेसे ।

आखि मेले तोमार आलो प्रथम आमार चाख जुडाल,
ओइ आलोतेइ नयन रखे मूदब नयन शेषे ॥

यह अहेतुक प्रेम ही वास्तविक भक्ति है। यही दर्शन का सब से बड़ा सत्य है।

१४

सुन्दर का मधुर आशीर्वाद

रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा बहु विचित्र स्वरों में प्रकट हुई है। उनके किसी एक पहलू का भी सक्षेप में लिखना कठिन है। मृत्यु को उन्होंने कभी भय कर नहीं माना सदा जीवन देवता की विचित्र लीला का गान करते रहे। एक कविता में उन्होंने लिखा है— ए जावन सुन्दरर पयछि मधुर आशीर्वाद मैंने इस जीवन में सुन्दर का मधुर आशीर्वाद पाया है। वस्तुत वे स्वयं मनुष्य जाति के लिए सुन्दर के मधुर आशीर्वाद के रूप में आए थे। भयंकर विरूप परिस्थितियों में उन्होंने उस महान् जीवन देवता के अनुग्रह की आशा नहीं छोड़ी जो सुन्दर के रूप में अपने को निरन्तर अभिव्यक्त करता जा रहा है जिसके प्रेम रूपी अमृत का मधुर आस्वाद मानव के प्रीतिपात्र में मिला करता है। मृत्यु के कुछ पूर्व जब वे एक बार रोगाक्रान्त हुए कई दिनों तक बेहोश पड़े रहे तब भी उनके अवचेतन चित्त में यह विश्वास काम कर रहा था। आरोग्य की एक कविता में कहा था— जिस दिन मैंने आसन्न मृत्यु की छाया अनुभव की उस दिन भय के हाथों मेरा पराभव नहीं हुआ मैं महत्तम मानव के स्पर्श से वंचित नहीं हुआ उन महामानवों की अमृत वाणी मेरे हृदय में बराबर संचित रही। मैंने जीवन विधाता का दाक्षिण्य अपने जीवन में पाया है उसकी स्मारक लिपि कृतज्ञतापूर्वक लिख जाता हूँ। इसी कविता में उन्होंने यह भी कहा था कि दुःसह दुःख के दिनों में मैंने अपनी अक्षय अपराजित आत्मा को पहचान लिया है। अक्षय-अपराजित आत्मा !—यही रवीन्द्रनाथ की महिमा मण्डित सम्पदा है।

सन १९३७ की कठिन बीमारी में उठकर उन्होंने जो कविताएँ लिखी थी वे बड़ी ही शक्ति सम्पन्न हैं। बीमारी से उठते ही उनके मन में अपनी

अवसन्न चेतना' की अनुभूतियाँ मँडराने लगी। उन दिनों संसार नए युद्ध की तैयारी में था। रण-दुंदुभियों का विरक्तिजनक निःस्वन आकाश को कम्पित करने लगा था। कवि की प्रयाणोद्यत आत्मा नई आशंकाओं से व्याकुल हो उठी थी। उसी मनःस्थिति में यह बहोली का दौरा आया जिसे कवि ने अपनी भाषा में 'अवसन्न चेतना की गोधूलिवेला' कहा था। उन्होंने एक कविता में उस गोधूलि वेला की अनुभूतियों को जिस प्रकार व्यक्त किया है उसमें उनकी उस व्यापक अनुभूति और अपराजित विश्वास का शक्तिशाली रूप देखने को मिलता है। यहाँ उनका अंतरतर का कवि रूप अपने का परमात्मा के कल्याणमय रूप के साथ एक होने की बात के प्रमत्त रूप में विद्यमान है। रोग ने जब कवि के मृण्मय शरीर को अक्षम और निष्क्रिय बना दिया था उस समय भी कवि का चिन्मय रूप सम्पूर्ण आत्मा के साथ जाग्रत था। यह कविता उनके अक्षत अपराजित आत्मा के प्रति दृढ़ निष्ठा को व्यक्त करती है। हिंदी में उसे कुछ इस प्रकार रूपांतरित किया जा सकता है—

अवसन्न चेतना की गोधूलि वेला में मैंने देखा कि मेरा शरीर कालिंदी के काले स्रोत में अपनी समस्त अनुभूतियों और विचित्र कल्पनाओं को लिए हुए एक विचित्र आच्छादन में आजन्म की स्मृतियों के लपटे हुए हाथ में अपनी बंसी लिए बहा जा रहा है। जैसे-जैसे मैं दूर-से दूर होता गया वैसे-वैसे उसका रूप म्लान होता आया। परिचित घाटों पर तरु छाया द्वारा आलिंगित शिवालयों में आरती की ध्वनि क्षीण होती गई। दीपशिखा ढक गई। नौका घाट पर बँध गई। दोनों किनारों पर लोगों का आना जाना बंद हो गया। रात घनी होती गई और अरण्य की प्रत्येक शाखा पर विहगों के मौन गानों ने महानिस्तब्धता के चरण तले अपनी बलि दे दी। विश्व की समस्त विचित्रताओं पर जल में और स्थल में एक प्रकार की काली अल्पना उतर आई। अंतहीन तमिस्रा में सारी देह छाया होकर बिंदु बिंदु विलीन होने लगी। नक्षत्रों की वेदी के नीचे अकेला स्तब्ध खड़ा हुआ था मैं। हाथ जोड़ कर ऊपर की ओर देखकर मैंने कहा 'हे पूषन्!

मृत्यु से लगभग डेढ़ वर्ष पहले लिखा था — बार-बार मन में आता है कि अब मैं चलूँ। कहाँ? जहाँ कोई नाम नहीं है। जहाँ विश्व का सारा परिचय मिट गया है, जहाँ दिन और रात एक होकर मिल गए हैं, जहाँ ज्योतिस्नान अंधकारालोक अखण्ड निःशब्द विराजमान हैं, जहाँ मेरे मैं की धारा भ्रमण पूर्ण करके उस समुद्र संगम में मिल जाएगी। मैं ठीक नहीं कह सकता कि अन्त में मेरा यह बाह्यावरण क्या होगा। क्या वह नाना रूप रूपान्तरों में होता हुआ कालस्रोत में बहता हुआ फिरेगा। और मैं अपनी स्वतन्त्रता में उसके बाहर के बहु पदार्थों से जनित अज्ञान लोकयात्रा को निरासक्त होकर देख सकूँगा?

वस्तुतः रवीन्द्रनाथ मृत्युञ्जय होकर ही जीते रहे। वे अपने जीवन देवता की मृत्यु के अनन्त समर्थक थे। मृत्यु जीवन के वेग को पवित्र बनाने के लिए आती है। गति का रोध ही मृत्यु है। जगजग में व्याप्त प्राण धारा विराट वेग से आगे बढ़ रहा है। उन्होंने इस प्राण धारा को निरवधि विराम विहीन अविरल अविच्छिन्न अजस्र कहा है। अपनी एक अत्यन्त [illegible] कविता 'चंचला' में उन्होंने इस जीवनधारा को विराट नदी कह कर सम्बोधित किया है। इसी विराट नदी के विरामहीन प्रवाह के स्पन्दन से शून्य सिहर उठता है और इस रूपात्मक जगत की बहु विचित्र रूप रस वर्ण और गंध में आप्लावित सृष्टि रूप ग्रहण करती है। उन्होंने कहा है— "हे विराट नदी, अदृश्य अशब्द तेरी वारिधारा बह रही निरवधि विरामविहीन—स्पन्दन से सिहरता शून्य तेरी रुद्र कायाहीन गति के वस्तुहीन प्रवाह के खा-खा प्रचण्डाघात उठते वस्तु रूपी फेन के पुंज —नवआलोक की तीव्र छटा विच्छुरित होती नित्य चित्र विचित्र वर्णस्रोत में उठ उठ निरन्तर धावमान विशाल तिमिर व्यूह से। इस चण्डगति से उठे घूर्णाचक्र के प्रत्येक स्तर में पतित घूर्णित भटकते मरते अनेकों सूर्य शशि नक्षत्र बदबुद की तरह दिन रात"। यह जो जीवनधारा की गति है उसका लक्ष्य क्या है? कवि ने इस उन्मत्त अभिसार यात्रा का बड़ा ही हृदयग्राही चित्र खींचा है। जीवनधारा की यह अभिसार-गति न जाने

नित जीवन-देवता को प्राप्त करने का प्रयत्न है। समस्त कारण ही यह गति है और इस गति से ही सारा विश्व स्थापित हो रहा है। उसका एक क्षण रुकना भी रूप को विकृत करना है। जहाँ कहीं भी विश्व में विकार दिखाई देता है वहाँ गतिरोध है और जहाँ कहीं भी जीवन का स्वच्छन्द प्रवाह सहज गति में चल रहा है वहाँ सौंदर्य है प्रेम है प्राण है। कवि ने कहा है- हे भैरवी हे वैरागिणी तुम जो चली हो यहान अबाध—यह गति ही तुम्हारी रागिणी—निःशब्द मोहन गान। क्या तुमको निरन्तर है पुकार रहा अनन्त सुदूर जिसका आर-छोर न सका कोई जान। उसकी ही निगाहों प्रति में तुम हाय घर-छोड़ी बनी चल पड़ी हो उन्मत्त उस अभिसार यात्रा को —प्रणय की यह विकट सवार! —कण्ठोद्गार वारम्बार टकराता बिखरता जा रहा नक्षत्र मुक्ताकार! घनमेचक चिकुर सभार उड़ उड़ व्योम तल को कर रहा है अन्ध तिमिराकार हिल उठत चपल विद्युत्लय में कर्ण कुण्डल व्याकुल विकम्प अचल छू रहा धरती विलुण्ठित हो रहा कम्पित तृणों पर और वन-वन में नवोदित तरुण किसलयराजि पर निर्बाध झर पड़ते हैं बारम्बार—चम्पा बकुल और जूही पाटल मार्ग में गिरि गिर तुम्हार नवल ऋतु की थाल से।

जीवन शक्ति की यह वेगवती धारा विकारों का ध्वंस करता जा रहा है। उसकी चरितार्थता इसी बात में है कि वह अपने को निःशेष भाव से दान करता हुई आगे बढ़ रहा है। जो अपने को निःशेष भाव से दे सकता है वही पवित्र होता है वही जीवन देवता को प्राप्त कर सकता है। इस जीवन धारा के पादस्पर्श से मृत्यु प्राण बनती है जीवन निर्विकार बनता है और मनुष्य देवत्व प्राप्त करता है। रवीन्द्रनाथ ने इसी जीवन धारा की महिमा को सुन्दर के मधुर आशीर्वाद के रूप में उपलब्ध किया था। इसीलिए वे मृत्यु की विभीषिका से कभी विचलित नहीं हुए। इस मस्तिमामयी जीवनधारा को लक्ष्य कर उन्होंने कहा था— केवल दौड़ना ही दौड़ना ही दौड़नी हो दौड़नी उद्दाम उद्धत वामगति से तानती भी हो। नहा फिर कर देखना जो रहा सर्वस्व अपना खींच-खाँच उलीचकर सब शून्य

रया तुमन एमा गवनाग किया ?

यहा पर राजा अपनी भूल समझता है। वह स्वय वि ाहा हा उठना ह । और इस वि ाह का ध्वजा उठाती है वहा रक्त करवीर धारिणा नन्दिनी। राजा के सबर उमा क विरुद्ध हा जात हैं। अपरवशित श्रमिक समह नन्दिना का साथ दता है।

पागल विश अत म रगमच पर आकर वश रक्त करवीर का माला पाता है। उस समय का अतिम गान--नन्दिना की अनुप्राणना का फल है--नाटक के रहस्य का स्पष्ट कर दता है।

विशु--उससे मैंन कहा था उसके हाथ म कुछ नहा लूगा। पर यह लेना पड़ा।

(जाता है)

(दूर से गान सनायी दता है)

पौष तो देर डाक दिय छ आय र चले

आय आय आय।

धूलार आंचल आज भर छ पाका फसले

मरि हाय हाय हाय !

(पौष तुम लोगो को बुला रहा है—आ चला आ चला आ। आज धूल का आंचल पकी फसलो से भर गया है। हाय-हाय कसा आश्चय है !)

नन्दिनी मनष्यता का आदश है। सौंदय और एश्वय--रजन और राजा--उसके मूल म अपन का निछावर कर देते हैं। शक्ति और ज्ञान इस आत्मा के उपासक हैं। पवित्रता और परिश्रम--विशु और फागलाल --है।

इसक अनुगत नन्दिना मनष्यता की मूर्ति है। रक्त करवार का यहा कथन है। रवीन्द्रनाथ ने अपनी कविता में किसी रूपक निरूपण का स्पष्ट निषध किया है। इस नाटक का भूमिका म तो उन्होन इसे विशष रूप से मना किया है। व कहत है--

हमारे नाटक भी एक ही समय मनुष्य और मनुष्यश्रेणी दोनों के लिए हैं। श्रोतागण यदि कवि की सलाह की अवज्ञा न करें तो मैं कहूँगा कि श्रेणी की बात भूल जाइये। यह समझ रखिये कि 'रक्त करबी' का समस्त प्लाट नन्दिनी नामक एक मानवी का चित्र है। चारों ओर के पीड़न के बीच होकर उसका आत्म प्रकाश हुआ है—फव्वारा जैसे यंत्रणा के पत्थर से हँसी अश्रु और कल कल ध्वनि के रूप में उच्छ्वसित हो उठता है वैसे ही। उसी चित्र की ओर ही अच्छी तरह देखने से तो शायद कुछ रस पा सकते हैं नहीं तो रक्त करबी की पँखड़ियों की आड़ में अर्थ खोजते समय कुछ अनर्थ हो जाय तो इसका जिम्मेवार कवि नहीं है। नाटक में ही इस बात का आभास दिया गया है कि जिस पाताल में खनिज धन खोजा जाता है नन्दिनी वहाँ की नहीं है। मिट्टी के ऊपर जहाँ प्राण का और रूप का नाच है जहाँ प्रेम की लीला है वह उसी सहज सुख की है—उसी सहज सौंदर्य की है।

एक युग था जब नाटक दर्शन-योग्य काव्य को ही कहते थे। उस समय वर्तमान साधन उपलब्ध नहीं थे। परन्तु कवि की कल्पना की तूलिका उन साधनों को शब्दों की झंकार के साथ बाँध देती थी। श्रोता उन्हें आसानी से पा जाता था। युग बदल गया है। आप जैसा भी नाटक दुनिया के सामने क्यों न रखें रंगमंच का निपुण निरीक्षक उसमें त्रुटि लगा ही देगा। सुप्रसिद्ध नाटककार बर्नार्ड शा ने ठीक लिखा है—

मैं पूर्वयुगीन सुखान्त और दुःखान्त नाटकों से उसी तरह घृणा करता हूँ जैसे धर्मोपदेश और स्वर समन्वय से। किन्तु मैं पुलिस तथा विवाह रिपोर्ट के समाचार या किसी प्रकार का नृत्य और सजावट आदि पसन्द करता हूँ जो मुझ पर या मेरी पत्नी पर बढ़िया प्रभाव डालते हैं। बड़ा भला चाहे जो कहे मैं किसी प्रकार के बुद्धिमूलक कार्य से आनन्द नहीं उठा सकता और न यही विश्वास करता हूँ कि कोई दूसरा उससे आनन्द उठा सकता होगा। ऐसी बातें नहीं कही जातीं फिर भी योरप और अमरिका के ९० फी सदी प्रसिद्ध पत्रों में नाटकों की समालोचना के

नाम पर दुःख पाता। का विस्तारपूर्वक और पालिश किया हुआ अर्थान्तर प्रकाशित होता है। अगर इन समालोचनाओं का यह अर्थ नहीं तो उनका कुछ भी अर्थ नहीं है।

—Saint John Preface lx

ऐसा नहीं होगा कि योरप और अमरिका की यह हवा भारतवर्ष के वायु मण्डल में घुस पड़ी है। यही कारण है कि आज दिन रवीन्द्रनाथ के कृपालु समालोचक उनके नाटकों को मिस्टिसिज्म की बुनियाद पर रचित बनाकर बिना विचार किये नाटक की सीमा के बाहर पहुँच जाते हैं। प्रथम तो रवीन्द्रनाथ के नाटकों में सब के सब इस मिस्टिसिज्म—रहस्यवाद की बुनियाद पर नहीं बने जो बने हैं भी वे इतने साधारण और मार्मिक हैं कि प्रस्तुत लेखक उन बुद्धिमान आलोचकों के इस तर्क को समझ ही नहीं सकता। मुझे नहीं मालूम होता कि राजा की रानी को आत्मा का प्रतीक समझनेवालों को कौन सा रस निर्झर मिल जाता है जो उसे साधारण रानी समझनेवालों को नहीं मिलता! उन्हें कुछ बुद्धि मूलक आनन्द मिल जाता होगा, परन्तु रस की प्रसन्न निर्झरिणी से भेंट नहीं होती होगी। रामायण के राम-सीता रावण को धर्म भक्ति-पाप सदा कल्पना करते समझनेवाले न जाने क्या आनन्द पाते हैं!

इस ग्रन्थ में रवीन्द्रनाथ के कुछ प्रमुख नाटकों के उद्धरण देकर पाठकों के सामने उनकी नाटक रचना-कला का एक उदाहरण उपस्थित किया गया है। उनके सब नाटकों पर लिखने से तो पूरी पुस्तक तैयार हो सकती है।

१६

कविवर रवीन्द्रनाथ का डाकघर

'डाकघर' एक छोटा-सा रूपक है। मुश्किल से इसमें सात सौ पंक्तियाँ होंगी। इसका विषय भी बहुत अपरिचित नहीं है। बच्चा अपने घर में आबद्ध रहना नहीं, बल्कि बाहर निकलना चाहता है। इसका प्लाट इतना सादा है कि उद्भट समालोचक इस सादगी पर मचल उठता है। इस इतना-सा बात के लिए नाटक लिखने की क्या ज़रूरत थी! एक कविता या एक गान लिख देना क्या पर्याप्त न होता? रवीन्द्रनाथ की कविता या गान लिख देना क्या पर्याप्त न होता! रवीन्द्रनाथ को कविता या गान लिखने में तो ज़रूरत से ज़्यादा शक्ति प्राप्त है, फिर उन्होंने यह नाटक का जंजाल क्यों खड़ा कर लिया?

इस स्वतन्त्रता की शताब्दी के गम्भीर समालोचक बीती हुई शताब्दियों की वर्गीकरण-पद्धति का उपहास करते हैं। भरत से लेकर धनिक धनंजय तक सभी नाट्याचार्य मनोभावों और अभिनय क्रियाओं का वर्गीकरण करते आये हैं। उसमें नाटक (रूपक) के मूल सूत्र की शायद परवा ही नहीं की गई। और आज का नाट्य समालोचक नाटक के रस, उसके प्रभाव, उसके Technique आदि का सूक्ष्म विवेचन करता है, प्लाट की जटिलता को अपनी सूक्ष्म बुद्धि के बल पर सुलझाया करता है और अपनी इसी मनोवृत्ति को स्वतन्त्रता कहा करता है। रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि जब पहले पहल यूरोप में पहुँची तो यूरोपियन समालोचक वर्ग ने चकित भाव से कहा—Mystic—रहस्यवादी! और मध्ययुग के ईसाई रहस्यवादियों के साथ उनकी तुलना शुरू हो गई। मानो ईसाई युग के रहस्यवादियों से तुलना हुए बिना रहस्यवाद (Mysticism) की समालोचना हो ही नहीं सकती। इसी तरह 'डाकघर' को देखकर किसी अंग्रेजी पढ़े

साहित्य गूर न सन्देह के साथ कहा था—नागपियर 'प्लाट'। माना शक्सपियर ही नाटक की अंतिम सीमा रहा है और प्लाट ही चरम विचार! तो क्या आधुनिक समालोचक धनिक धनजय की पुरानी खाई की ओर ही अग्रसर नहीं हो रहा है?

थोडे म डाकघर की कहानी इस प्रकार है—

माधवदत्त के कोई पुत्र नहीं है। उसने अमल को अपनी स्त्री के विवाह करने पर गोद लिया है। वह भी उसे प्यार करता है। अमल बीमार है। वैद्य ने उसे बाहर की हवा से बचाने का आदेश किया है किन्तु अमल घर में बन्द होकर रहना नहीं चाहता। वह सामने के पहाड को पार करके सुदूर चला जाना चाहता है। वह गिलहरी होकर भी बाहर रहना चाहता है। अच्छे होने ही उसकी अभिलाषा है कि वह 'टन मेन' करन के जल म पर उतारकर पार होता हुआ चला जायगा—दोपहर के समय जब सब लोग दरवाजे बन्द करके घर में सोते रहेंगे उस समय मैं काम खोजते खोजते घूमते फिरते न जाने कहाँ कितनी दूर चला जाऊँगा।

माधवदत्त के समझा कर चले जाने पर बालक खिडकी पर बैठ जाता है। सामने की सडक से दही-दही की आवाज लगाता हुआ दहीवाला निकल जाता है। बालक उसे बुलाता है और उसका घर-द्वार पूछता है। बालक अमल दहीवाले के गाँव कभी गया नहीं पर न जाने क्या उसे जान पडता है कि वह उस गाँव म गया है अनेक पुराने वृक्षों के नीचे एक लाल रंग के रास्ते के किनारे वह गाँव है वहाँ पहाड पर गाएँ चरा करती है लडकियाँ नदी से घडे में जल भरकर सिर पर लेकर आती हैं उनकी साडी लाल होती है। इसके बाद बालक दही-दही की मीठी और सुरीली आवाज सीख कर दही बेचने के सुन्दर कार्य को करने की अभिलाषा प्रकट करता है। इसी तरह वह पहरेवाले को बुलाकर उसके घंटे के बजने का कारण पूछता है। वह जानना चाहता है कि समय कहाँ जा रहा है। वह देश शायद किसी ने देखा नहीं! मेरी बहुत इच्छा होती है कि समय के साथ ही चला जाऊँ—जिस देश की बात कोई नहीं जानता, उसी बहुत दूर के

दा म ! यह सुनकर बालक को बडी प्रसन्नता होती है कि उस देश म सभा का जाना होना है। प्रहरी से उम मालूम होता है कि सामन क बडे वा मकान म डाकघर है।

अमल—डाकघर ? किसका डाकघर ?

पहरेदार—डाकघर और किसका होगा ? राजा का डाकघर। यह लडका तो अजाब है !

अमल—राजा क डाकघर म राजा के यहाँ स सब चिटिठयाँ आती है ?

पहरेदार—और नही तो क्या ? देखना एक दिन तुम्हारे नाम भी चिट्ठी आयगी !

अमल—मेरे नाम भी चिट्ठी आयगी ? मगर मैं तो लडका हू।

पहरेदार—लडको को राजा इतना इतनी-सी छोटी छोटी चिटिठयाँ लिखा करते हैं।

अमल—ठीक होगा ! मैं कब चिटठी पाऊगा ? मुझ भी व चिट्ठी लिखेग तुमने कसे जाना ?

पहरेदार—ऐसा न होता तो इतने बडे एक सुनहरे रग के झडे को फहराकर व ठीक तुम्हारी खिडकी क सामने ही डाकघर खोलने क्या जाते ? —लडका मुझे बडा अच्छा लग रहा है।

अमल—अच्छा राजा के पास स चिटठी आने पर मुझे कौन ला देगा ?

पहरेदार—राजा के बहुत से डाक-हरकारे हैं—देखा नहीं तुमने छाती पर गोल-गोल सोने का तमगा लगाकर वे घूमा करते हैं।

अमल—अच्छा व घूमते कहाँ है ?

पहरेदार—घर घर देश-देश।—इसके सवाल सुनकर तो हँसी आती है।

अमल—बडे होने पर मैं राजा का डाक हरकारा बनूगा।

इसके बाद स बालक को एक ही रट है राजा की चिट्ठी उसके पास आयगी और वह स्वय देश-विदेश चिट्ठी बाँटता फिरेगा ! प्रहरी से वह प्रार्थना

करता है कि हरकारे को उसका नाम याद है। इसके बाद मरनार आता है जिसके डर से पहरेदार सरक जाता है। मरनार मनहूस है किसी की उन्नति देख नहीं सकता। बालक उसे भी पुकारकर राजा की चिट्ठी के बारे में सवाल करता है। यह बालक के सरल प्रश्नों का चक्कर लिया हो जाता उसका माधवदत्त का अनिष्ट चिन्ता भी करने लगता है। इसके बाद *मालिन की लड़की सुधा आती है और उसका आधा खुला खिड़की* भी बन्द कर दी जाती है। वह फूल चुनकर माला बनाया करती है। जल्दी के कारण वह रुक नहीं सकती परन्तु यह प्रतिज्ञा करती जाती है कि वह फूल लेकर आयेगी और बालक को भूल नहीं जायेगी। फिर लड़कों का दल आता है। उन्हें अपने खिलौने देकर अमल उनसे अनुरोध करता है कि वे उसके सामने ही खेलें। लड़के जब खेल शुरू कर देते हैं तो वह ऊँघने लगता है इस पर लड़के चले जाने लगते हैं। अमल उनसे अनुरोध करता है कि वे किसी डाक के हरकारे से उसका परिचय करा दें।

अंतिम समय में अमल अधिक रुग्ण हो जाता है। माधवदत्त उसे और अधिक यत्न करना चाहता है। बालक कहता है कि अगर वह खिड़की के पास न बैठेगा तो उसका फकीर लौट जायगा। फकीर के वेश में ठाकुर्दा (पितामह—दादा) प्रवेश करता है। ठाकुर्दा का प्रवेश सर्वत्र है वह बालकों को पागल कर देता है। फकीर को देखते ही बालक प्रसन्न हो जाता है। उसके पूछने पर फकीर (ठाकुर्दा) बताता है कि वह क्रौंच द्वीप से आ रहा है। क्रौंच द्वीप का सौंदर्य बालक के निकट मानो अपरिचित नहीं है। ठाकुर्दा भी बालक की प्रत्येक बात का समर्थन कर उसका उत्साह बढ़ाता है। फिर चिट्ठी की बात उठती है। बालक बताता है कि वह जैसे देख रहा है कि राजा का हरकारा पहाड़ के ऊपर से उतरा आ रहा है। उसके बाएँ हाथ में लालटेन है कंधे पर चिट्ठी का थैला। न जाने कितने दिन से वह उतरा ही आ रहा है। फिर वह राजा के निकट जाने की इच्छा प्रकट करता है और उसका डाक हरकारा होने की इच्छा भी प्रकट करता है। वैद्य आकर उसकी बुरी दशा देख कर माधवदत्त को और भी सावधान रहने

का वह जाना है। फिर सरदार आता है। बालक के पूछने पर सरदार ठिठोली के लिए एक सादा कागज देकर कहता है कि हाँ जा तुम्हारे साथ राजा का दोस्ती है न ! यह चिट्ठी लो। घर में मत्त विमान तयार रखो राजा न दा एक दिन के भीतर हा आन वाला है ! मगर बालक इस पर विश्वास करता है और ठाकुरदा सरदार की कुटिलता को जानकर भी कहता है कि हाँ बेटा सचमुच यह राजा की चिट्ठी है। माधवदत्त सरदार के व्यंग्य से अनिष्ट की आशंका से घबराकर उसकी खुशामद करना चाहता है। इसी बीच राजा का दूत सचमुच आ उपस्थित होता है और राजा के आने की सूचना देता है। सरदार फीका पड जाता है। माधवदत्त अमल से कहता है कि बेटा हमारी अवस्था खराब है राजा से कुछ माँग लेना। इस पर उत्साहित होकर अमल कहता है कि वह राजा से डाक हरकारे का पद माँग लेगा ! थोड़ी देर बाद राजा के भेजे राजवैद्य आते हैं, और सारे दरवाजे खोल देने की आज्ञा करते हैं। दीपक भी बुझवा देते हैं। अमल अतिशय प्रसन्न हो जाता है।

राजवैद्य—आधी रात को जब राजा आयेंगे तो तुम बिछौना छोड़कर उनके साथ बाहर चल सकोगे ?

अमल—जरूर चल सकूँगा। बाहर होने से मेरा प्राण बचेगा। मैं राजा से कहूँगा कि इस अंधकारपूर्ण आकाश में ध्रुवतारा को पहचनवा दो। मैंने उस तारा को जान पड़ता है, कितनी ही बार देखा है परन्तु वह कौन है यह तो मैं नहीं पहचानता।

राजवैद्य—वे सब पहचनवा देंगे।

(कुछ देर के बाद बालक ऊँघने लगता है)

राजवैद्य—कुछ जरूरत नहीं। इस बार तुम सब लोग स्थिर हो जाओ। यह आई नींद आई। मैं बालक के सिरहाने बैठूँगा उसे नींद आ रही है।

और बालक सो जाता है। इसी समय सुधा आती है और फूल दे जाती है।

करता है कि हरकारे को उसका नाम बता दे। इसके बाद सरदार आता है जिसके डर से पहरेदार सहम जाता है। सरदार मग़रूर है किसी का उन्नति देख न । सह सकता । बालक उसे भी बुलाकर राजा की चिट्ठी के बारे में सवाल करता है। वह बालक के गम्भीर प्रश्नों का व्यंग्य किया हो गया उसको माधवदत्त का अतिथि किया भी खलने लगता है। इसके बाद मालिन की लड़की सुधा आती है और उसका आना मानो खिड़की भी बन्द कर देता जाता है। वह फूल चुनकर माला बनाया करता है। अमल के कमरे पर रुक नहीं सकती परन्तु वह प्रतिज्ञा करती जाती है कि वह फूल लेकर आयगी और बालक को भूल नहीं जायगी। फिर लड़कों का दल आता है। उन्हें अपने खिलौने देकर अमल उनसे अनुरोध करता है कि वे उसके सामने ही खेलें। लड़के जब खेल शुरू कर देते हैं तो वह ऊपर उठता है इस पर लड़के घर जाने लगते हैं। अमल उनसे अनुरोध करता है कि वे किसी डाक के हरकारे से उसका परिचय करा दें।

अंतिम समय में अमल अधिक रुग्ण हो जाता है। माधवदत्त उस ओर अधिक यत्न करना चाहता है। बालक कहता है कि अगर वह खिड़की के पास न बैठेगा तो उसका फकीर लौट जायगा। फकीर के वेश में ठाकुर्दा (पितामह—दादा) प्रवेश करता है। ठाकुर्दा का प्रवेश सर्वत्र है वह बालकों को पागल कर देता है। फकीर को देखते ही बालक प्रसन्न हो जाता है। उसके पूछने पर फकीर (ठाकुर्दा) बताता है कि वह क्रौंच द्वीप से आ रहा है। क्रौंच द्वीप का सौंदर्य बालक के निकट मानो अपरिचित नहीं है। ठाकुर्दा भी बालक की प्रत्येक बात का समर्थन कर उसका उत्साह बढ़ाता है। फिर चिट्ठी की बात उठती है। बालक बताता है कि वह जैसे देख रहा है कि राजा का हरकारा पहाड़ के ऊपर से उतरा आ रहा है। उसके बाएं हाथ में लालटेन है कंधे पर चिट्ठी का थैला। न जाने कितने दिन से वह उतरा ही आ रहा है। फिर वह राजा के निकट जाने की इच्छा प्रकट करता है और उसका डाक हरकारा होने की इच्छा भी प्रकट करता है। वैद्य आकर उसकी बुरी दशा देख कर माधवदत्त को और भी सावधान रहने

को वह जाता है। फिर सरदार आता है। बालक के पूछने पर सरदार चिन्नी के लिए एक सादा कागज़ देकर कहता है कि हाँ जा तुम्हारे साथ राजा की दोस्ती है न! यह चिन्ठी लो। घर में सत्तू पिसान तयार रखो, राजा ने दो एक दिन के भीतर ही आने को कहा है।' सरल बालक इस पर विश्वास करता है और ठाकुर्दा सरदार को कटिलता को जानकर भी कहता है कि हाँ बेटा सचमुच यह राजा की चिट्ठी है। माधवदत्त सरदार के व्यंग्य से अनिष्ट की आशंका से घबराकर उसका सम्मान करना चाहता है। इसी बीच राजा का दूत सचमुच आ उपस्थित होता है और राजा के आने की सूचना देता है। सरदार फीका पड जाता है। माधवदत्त अमल से कहता है कि बेटा हमारी अवस्था खराब है राजा से कुछ माँग लेना। इस पर उत्साहित होकर अमल कहता है कि वह राजा से डाक हरकारे का पद माँग लेगा। थोडी देर बाद राजा के भेजे राजवैद्य आते हैं, और सारे दरवाज़े खोल देने का आदेश करते हैं। दीपक भी बुझवा देते हैं। अमल अतिशय प्रसन्न हो जाता है।

राजवैद्य—आधी रात को जब राजा आयेंगे, तो तुम बिछौना छोड़कर उनके साथ बाहर चल सकोगे?

अमल—ज़रूर चल सकूँगा। बाहर होने से मेरा प्राण बचेगा। मैं राजा से कहूँगा कि इस अन्धकारपूर्ण आकाश में ध्रुवतारा को पहचनवा दो। मैंने उस तारे को जान पड़ता है कितनी ही बार देखा है, परन्तु वह कौन है यह तो मैं नहीं पहचानता।

राजवैद्य—वे सब पहचनवा देंगे।

(कुछ देर के बाद बालक ऊँघने लगता है)

राजवैद्य—कुछ ज़रूरत नहीं इस बार तुम सब लोग स्थिर हो जाओ। यह आई उसकी नींद आई। मैं बालक के सिरहाने बैठूँगा, उसे नींद आ रही है।

और बालक सो जाता है। इसी समय सुधा आती है और फूल दे जाती है।

लोगे कंगना एक निराली
अपने हाथों पर दे डाली!
घर आकर दोनों उतार कर देख रहा—यह क्या है!
एक स्वर्ण का कण गहरा सा उसमें पड़ा हुआ है
राजकुमारी के हाथों में जो कर दिया सवर—
वह सोना होकर झील में पड़ा हुआ है स्मर।
रोती नत भर नयन बीच अब—
क्यों न दिया सरवर उचित तब।

७

आत्मत्राण

विपदाओ से मुझे बचाओ यह मेरी प्रार्थना नहीं
केवल इतना हो (करुणामय,)
कभी न विपदा मे पाऊँ भय ।
दुख-ताप से व्यथित चित्त को नहीं सान्त्वना नहीं सही
पर इतना होवे (करुणामय)
दुख को मैं कर सकू सदा जय ।

कोई कहीं सहायक न मिले
तो अपना बल पौरुष न हिले
हानि उठानी पड़े जगत मे लाभ अगर वचना रही
तो भी मन मे ना मानू क्षय ॥

मेरा त्राण करो अनुदिन यह मेरी प्रार्थना नहीं
बस इतना होवे (करुणामय)
तरने की हो शक्ति अनामय ।
मेरा भार अगर लघु करके न दो सान्त्वना नहीं सही ।
केवल इतना रखना अनुनय—
वहन कर सकू इसको निर्भय ।

नतशिर होके सुख के दिन मे
तव मुख पहचानू छिन छिन मैं
दुख रात्रि मे करे वचना मेरी जिस दिन निखिल मही
उस दिन ऐसा हो करुणामय
तुम पर करू नहीं कुछ संशय ॥

८

असमाप्त

जीवन में जितनी पूजायें समाप्त नहीं हो सकीं
मैं ठीक जानता हूँ वे भी खो नहीं गई हैं।
जो फूल विकसित होने-न-होने पृथ्वी पर झड़ गया
जिस नदी ने महासागर में धारा खो दी
मैं ठीक जानता हूँ वह भी खो नहीं गई है।

जीवन में आज भी जो कुछ पीछे छूट गया है
मैं ठीक जानता हूँ वह भी खो नहीं गया है।
मेरा (जो-कुछ) अनागत है (जो-कुछ) अनाहत है
तुम्हारी वीणा के तारों में वे सब बज रहे हैं
मैं ठीक जानता हूँ वे भी खो नहीं गये हैं।

९

ओरे नवीन, ओ अपरिपक्व

ओ रे नवीन, ओ अपरिपक्व, तू आ रे,
ओ हरित कांति ओ बोधहीन, (ओ प्यारे)
तू मार अधमरों को है आज बचा रे।

य रक्त-ज्योति क मद स जो मतवाले
जो चाहें वह लें आज तुझे (गम खा ले)
तू सबल तर्क को करके तुच्छ उठा ले
निज पूच्छ उच्च में और सदर्प नचा ले—
आ रे दुरंत आ ओ निजरस निराले।

यह देख हिल रहा पिंजड़ा मंद हवा म
उस घर मे या उस घर के दक्षिण-बामे
कुछ और नहीं है हिलता या डुलता रे।

घर जो प्रवीण है जो अत्यन्त पका है
उसक डैने म लोचन-बान ढँका है
या झीम रहा है मानों चित्र अंका है
उस अंधकार क यदद्वार पजर मे।
जीवत प्राणमय, आ इस गृह जजर म

बाहर की ओर न कोई देख रहा है
कैसा प्रचण्ड चक्रवात बढ़ा आता है
जल-ज्वार-मध्य लहरें गरजें फुफकारें।

चल्ना न चाहतीं मिट्टा का सन्तान
पग रग मि गीपर (उन अनाविय मानें)।
अपना अपना उनकी हैं बांस मचान
जिन पर अडोल आसन बांध व गर्वित ।
आ र जनात आ अपरिवक्व आ जस्थिर ।

मत तुम रोकना चाहते अरमर व
माचग देत प्रकाश नया औचक व—
यह कसा अद्भत काण्ड आज दिवता र।

पावक तरा सघात तोड जायेंग
गयनीय छोर निज दौड गोड जायेंग
इस अवसर पर निशा से जग जायग—
फिर गत्यागया सत्य और मिथ्या का।
आ र प्रचण्ड आ अपरिपक्व एकाश।

पूजा करा वह शृखल देवी का है।
वह नित्य सत्य होकर वया रहन का है ?
तू द्वार तोड आ र पागल मतवार।

झझा समान विजय ध्वज को फहराता
आकाश ठहाके से विदारता जाता
भोला बाबा क झाड बुटाता
तू चन चन कर जा
आ र प्रमत्त झकको

रस वध माग तू
स्नको घसाट

बाधा हैं हैं आघात जानता हूँ मैं
पर यही जानकर प्राण वश म झूमें।
पुस्तक पन्नों म विधि याचन का धूम
है मची हुई तू इन्हे तोड़ ए सच्चे
ओ र प्रभवत ओ अपरिपक्व ओ बच्चे।

तू ह चिर-यावनगाजा चिरजावी ह
दे झाड सग्न यह जो कि जाणता की ह
फिर दे वरन निगप प्राण का धारें।

तर हरियाला मन स मस्त भरा ह
तेरी विद्युत से झझा मघ भरा है।
ओ वकुलमाल तू पहने सातन्रा ह
पहनाता तू उसको वसत क गल म।
ओ मत्यहान ओ अपरिपक्व ओ पल म।

चंचला

हे विराट न !
अदृश्य अशब्द तेरा वारिधारा बह रहा निरवधि विराम विहीन
अविरल-अविच्छिन्न-अजस्र !
—स्पंदन से सिहरता शून्य तेरी रुद्र कायाहीन गति में
वस्तु हीन प्रवाह के सा सा प्रचण्डमान उठते वस्तु रूपी फेन के
शत पुंज —
नव आलोक की तीव्र छटा विच्छुरित होती नित्य चित्र विचित्र
वर्णस्रोत में
उठ उठ निरंतर धावमान विशाल तिमिर व्यूह से।
(इस चण्ड गति से उठ) घूर्णचक्र के प्रत्येक स्तर में
पतित घूर्णित भटकते मरते अनेकों सूर्य शशि नक्षत्र बुदबुद की
तरह दिनरात।
हे भैरवी हे वैरागिणी
तुम जो चलीं उद्देश्य हीन अबाध—
यह गति ही तुम्हारी रागिणी—
निःशब्द मोहन गान।
क्या तुमको निरंतर है पुकार रहा अनंत सुदूर—जिसका
ओर छोर न सका कोई जान !
उसकी ही निगोड़ी प्रीति से तुम हाय घर छोड़ी बनीं
चल पड़ी हो उन्मत्त इस अभिसार-यात्रा की प्रणय का यह विकट
सचार !

—वक्षोहार बारबार टकराता बिखरते जा रहे नक्षत्र मुक्ताकार !
घन मेचक चिकुर सम्भार उड उड व्योम तल को कर रहा है
अर्धतिमिराकार
हिल उठते चपल विद्युद्वलय के कर्णफूल दुरंत,
व्याकुल विकल अचल छू रहा धरती, विलुण्ठित हो रहा कम्पित
तृणों पर
और वन-वन मे नवोदित तरुण किसलय राजि पर निर्बाध
झर पडते कि बारबार—चंपा, बकुल जुही और पाटल
माग मे,
गिर गिर तुम्हारे नवल ऋतु की थाल से अनजान !
केवल दौडती हो, दौडती उद्दाम उच्छल वाम गति से
ताकती भी हो नहीं फिर कर लुटाती जा रही सर्वस्व अपना
खींच-खींच, उलीच कर सब शून्य करती हुई निज भाण्डार
कुछ भी नहीं सचती-सँजोती-लेती बटोर बटोर ।
मन मे कहीं शोक न मोह तुम निर्भय निधडक निर्छोह !
इस आनन्द मे पथ के लुटाती जा रहीं निर्बाध निज पाथेय
जिस क्षण पूर्ण हो जातीं उसी क्षण कुछ नहीं रहता
तुम्हारा सभी हो जाता निखिल का,
स्वयं का इस भांति दे देना उछल अबोध-मस्ती का कि अलबेला नशा
निर्द्वन्द्व ! इससे तुम सदैव पवित्र !
पादस्पर्श से है भूल जाती मलिनता निज विश्व धूलि सदा निमेष
निमेष मे उन्मिषित होकर मर्त्य बनती प्राण प्रति उल्लास मे
बस एक क्षण भर अगर थक कर
सांस लो विश्वास का तुम तनिक रुक कर
स्फीत हो उठे जगत दुर्धर पुञ्जीभूत पर्वत-सदृश-वस्तु समूह से
अति पंगु-मूक-स्तब्ध बधिर निरथ
वह बाधा घमंडी

स्पन्द तब भी ! मगर
नहीं हाय एक भी पद रोर गहरा--
दाह से भी दाहक परमाणु अपने आप हो भार से--
सन्ध्य ज्वलित दारुण विश्व विहार से--
हो उठे विप्लव असीम नभ के मन में हो वेदना के मूल से।
हे नटी ! हे चपलापार तुम हे अल प विहारि मोहिनि सुन्दरी !
तर--मनोहर नृत्य का मन्दाकिनी। हरहर सजित हो कर रहा पावन
निरन्तर विश्वजीवन को मरण के स्नान से
नि:शब्द निमज्ज नाल में विकसा रही है इस असीम अनन्त तन
आकाश का आलोक !

रे कवि
आज तुम्हारी उत्तरल चवल बना डाला नवल नकार मतरा इस
भुवन को मलला न और इसके अलम्भित पद-सचरण की अहैतुक
निर्वाध गति न नाडियों मे आज तेर सन रहा हू किसी चवल का
पगध्वनि वक्ष मे रणरणित नि स्वन
है न काई जानता यह--नाचता है रवत म तेर उदधि को लोल लहरें
कापती है आज मन म विव्हलता व्याकुल बना को
याद आती है पुरानी बात --
पग पग से चला हू
स्वलित हो हो
सदा चप चप
रूप से तय रूप मे ढलता हुआ
फिर प्राण से नवप्राण मे जलता हुआ
(हो दिवस या कि विभावरी)
हो प्रात या कि निशीथ
जब जो कछ मिला है हाथ म
देता गया हू --

दान से नवगात को ।
(पद बध म उन्मत्त) र कवि देख इस स्रातस्विनी क स्रात को जा
मचर हो उठा अचानक
काँपती थरथर तरणि है तार का सचय पडा रह जाय तरा तीर पर हो
उल कर उस ओर तू मन ताक ।
ऐसा हो कि वाणी सामन का खींच ले तुझको महागति स्रोत म
पैठ पड उस तीव्र कोलाहल मुखरता स
बचा ले इस तिमिर क अनल तल से--और ले जाए उठा कर
उस अकूल ज्योति की ही ओर--
जिसका कहीं ओर न-छोर ।

मृत्युंजय

दूर से मैं समझता था तुम महा दुर्जय निठुर हो।
काँपती धरती तुम्हारे अग्नि शासन से
भयंकर विभीषिका के रूप हो तुम
लपलपाता यह तुम्हारी लोल जिह्वा दपदपाता जल रहा है
दुखी जन के भय विदीर्ण विशीर्ण हृदयों में —
तुम्हारे दाहिने कर का भयंकर खेल उठता है घुमड़ते बादलों
की ओर
झुका के
वहाँ से खींच लाता विकट-दारुण वज्र।

जब तुम्हारे सामने पहुँचा कलेजे में अजब-सी धुकधुकी थी
काँपते पग थे बढ़ा मैं भीत भीत
उधर
तुम्हारे भृकुटि-तर्जन में तरंगित हो रहा था निकट भावी
विकटतर उत्पात
—वह आघात आ टूटा!

—कि पंजर काँप उट्ठा धड़क उट्ठा वक्ष
करतल से दबाकर उसे मैंने जानना चाहा
कि कुछ बचा शेष अब भी है?
बचा क्या है अभी कुछ आखिरी आघात?
—वह आघात आ टूटा!!

बस यही था ?
और कुछ है नहीं बाकी मार ?
चोट बस, इतनी तुम्हारी थी ?
--कि मेरा भय विलीन हुआ ।

जब तुम्हार हाथ का वह वज्र उद्यत था कठिन आघात करन हेतु
तब मैं मान बठा था कि तुम हो बडे--मुझसे बडे !
पर अपने कठिन आघात के ही साथ
तुम आए उतर मरे धरातल पर पलक म
और तुम हो गये छोटे एक क्षण मे आज ।
टूटकर बिखरा कि मरा त्रास, मेरी लाज ।

हो बडे जितने न क्या तुम
किन्तु उतने बडे निश्चय ही न
जितनी बडी होती मत्यु !
--मै मगर हूँ मत्यु से भी बडा ।
केवल यही अन्तिम बात कह म चल पडूगा (तात)
--केवल यही अन्तिम बात !

नया वर्ष

माग बनाग निशा पुरातन वष का
म बन गर्व यह आ यगाह। ।
माग पर सर यसाया है प्रभराग पप न
इस रह भरव गान का हो ।
दूर स ह झनझनाता तीव्र नाण म पेध
मर म माग सारा—
ज्यो किसा पथभ्रष्ट बरागी-विकल की
बज रहो हो तप्त तारा ।

ओ यगोहा
धूम्रधसर माग की यह धूज धात्री आज तेरी
चलन अचल म विकट गति बध म बाया घनरी ।
हृदय म तुझको छिपा के
धरा-बधन से हटा ल
हर दिग तर से तुझ ले जाय अय दिगन्त को हो ।

ओ वगोहा
है न सर लिय मगल गल की ध्वनि आज गोभन
माध्य दापालोक या कि प्रिया-नयनजल का प्रलोभन ।
है प्रनापा कर रहो वशाख की वात्या कराली
लिय आशीर्वाद वज्र निनाद श्रावण रात्रि काली ।

है खड़ा प्रत्येक पग पर कण्टका का विकट स्वागत
मार्ग में है गुप्त सब पण समुद्यत
आज कसेगा तुझे जय नकनाद
प्राप्य तुझको रूप का यह ही प्रमाद ।

ओ बटोही,
क्षति जगायगी चरण पर भेंट अलख अमोल तर--
क्या अमृत अधिकार चाहा था ? (सरल अनजान मर ।)
हाय वह तो सुख नहीं है
या न नम विश्राम ही है
मृत्यु का आक्रमण और निषेध प्रतिग्रह का
यही नववय का आलाप
रुद्र प्रसाद तेरे नीश ।
फिर भी भय नहीं है भय नहीं है, ओ बटोही ।
दिगभ्रमित घर बार छोडो
निठुर अपलक्ष्मी निगोडी
यही तेरी आज वरदात्री बनगा

ओ बटोही
जाण बलात निगा पुरातन पथ को
ले ! कट गई वह ओ बटोही ।
आज आया है निडर यह
द्वार बधन दूर होवे
पात्र मद का चूर होवे
जानता इसको नहीं मैं
समझता इसको नहीं मैं
किन्तु फिर भी पकड़ इसकी अगलि तू (ओ अमानी !)

व्यथित हो हृत्कम्प में तार इमा का दीप्त गाना
ओ पपीहे
फट गई कट जाय जाग निशा पुराना ।

१३

कैमेलिया

नाम था उसका कमला ।
मैंने उसकी कापी पर लिखा हुआ देखा है ।
ट्राम मे जा रही थी कालेज के रास्ते
साथ में ले लिया था छोटे भाई को ।
मैं था पीछेवाली बेंच पर ।
मुख के एक ओर की गोल रेखा दिख रही थी
और गर्दन पर जूड़े के नीचे के कोमल केश ।
गोद में पड़ी हुई थीं कापी और किताबें ।
जहाँ मुझे उतरना था वहाँ उतरना न हो सका ।
अब समय का हिसाब करके निकला करता हूँ —
वह हिसाब मेरे काम के साथ ठीक मेल नहीं खाता,
लेकिन प्रायः ठीक मिल जाता है उनके जाने के समय के साथ ।
अक्सर मुलाकात हो जाती है ।
मन-ही-मन सोचता हूँ —
और कोई रिश्ता हो न हो मेरी सहयात्रिणी तो है
निर्मल बुद्धि का चेहरा जैसे जगर मगर हो रहा हो
सुकुमार ललाट के ऊपर केश उठाए हुए होते हैं
उज्ज्वल आँखों की दृष्टि मे कोई सकोच नहीं है ।
मन ही मन सोचता हूँ कोई संकट क्यों नहीं दिखाई देता
ताकि इसे उद्धार करके जन्म सार्थक करूँ —

गाँव में कोई एक उत्पात
कोई एक नए ढंग का सरदार।
ऐसा भी आकर्षण होता ही रहता है।
लेकिन मेरा भाग्य ठंडे पानी का लोटा है
उसमें कोई भारी भरकम इतिहास अटता ही नहीं
निराट दिन भर का तरह उसका दरवाजे पर में टँगे रहते हैं
न उसमें मगर मच्छ का निमंत्रण है न राजहंस का।

एक दिन टमटम ला था
कमला के पास बैठा था एक अधगोरा।
जी में आता था अकारण ही ऐसा हाथ धरा दूँ
कि सिर से उसकी टोपी उछल पड़े।
गालियाँ देकर उतार दूँ सारी राह में।
कोई बहाना नहीं मिलता था हाथ खुजला रहा था
इसी समय उसने एक मोटा चुरुट चलाया
लगा धुआँ खींचने।
मैं नज़दीक जाके बैठ गया फेंको चुरुट।
उसने मानो बात ही नहीं सुनी
धुआँ उड़ाता रहा मौज के साथ।
मुँह से चुरुट खींचकर फेंक दिया मैंने रास्ते पर।
मुक्का बाँध कर एक बार मेरी ओर कटमटा के देखा
ज़्यादा कुछ बोला नहीं एक उछाल में उतर पड़ा।
शायद मुझे पहचानता था।
फुटबाल के खेल में मेरा नाम है खासा अच्छा नाम
उस लड़की का मुँह लाल हो गया
किताब खोलकर सिर झुकाकर पढ़ने का भान करने लगी
हाथ उसके काँपते रहे

कमाथ से भी नहीं देखा वीर पुरुष की ओर ।
दफ्तर जानेवाले बाबुओं ने कहा खूब किया आपने भाई साहब ।
जरा देर बाद ही वह लड़की उतर गई, वमौके
और चली गई एक टक्सी लेकर ।
दूसरे दिन उसे नहीं देखा
उसके बाद वाले दिन को भी नहीं ।
तीन दिन बाद क्या देखता हूँ, कि
एक टैक्सी पर चली है कालेज की ओर
मैं समझ गया गवार की तरह गलती कर चुका हूं
वह लड़की अपनी फिक्र आप ही कर सकती है
उसे मेरी कोई जरूरत थी ही नहीं ।
फिर मन ही मन कहा, मेरा भाग्य गदले पानी की तलैया है —
आज बार-बार वीरत्व की स्मृति आवाज दे रहा है
मजाक की तरह ।

न किया गलती सुधारनी होगी ।
खबर मिली है वे लोग गर्मी की छुट्टियां में दार्जिलिंग जा रहे हैं ।
इस बार मुझे भी हवा-पानी बदलने की अनिवार्य आवश्यकता हुई ।
उनका वासस्थान छोटा सा था
नाम दिया था मोतिया —
रास्ते में जरा सा उतर कर एक कोने में
पेड़ों की आड़ में
सामने था बर्फ का पहाड़
मना इस बार वे लोग नहीं आएंगे ।
सोच रहा था लौट चलूं
ऐसे ही समय अपने एक भक्त से मुलाकात हो गई
मोहनलाल —

शालवन के भीतर से चमक आती है
हाथ में होता है छाता
मस्तक के फूल पत्तों तले सिर रगड़ते हैं —
पर वह क्या किसी की ओर देखती है !
घाट पारवाली नाव को पल्ले ही पार करके उस पार
निकल जाती है
वहाँ नीलम वृक्ष के नीचे किताब पढ़ती है।
और मुझे जो उसने पहचान लिया है
यह बात मैं समझ गया इस तरह कि वह मेरा लक्ष्य ही नहीं करती।
एक दिन देखता हूँ नदी किनारे बालू पर उनका पिकनिक चल रहा है।
जी में आया जाकर कहूँ कि क्या मेरी जरूरत बिलकुल नहीं है।
मैं नदी से पानी ले आ सकता हूँ—
जंगल से लकड़ी काट ले आ सकता हूँ
और फिर आस-पास के जंगल में
क्या कोई भलामानस भालू भी नहीं मिलता ?
देखा दल में एक युवक भी है—
कमीज पहने है बदन में विलायती रेशम का कोट है
कमला की बगल में पैर फैला कर बैठा हुआ है
और कमला अन्यमनस्क होकर स्वत जवा फूल की पंखुड़ियाँ चिथड़ रही है।
बगल में पड़ी हुई है विलायती मासिक पत्रिका।
क्षण भर में ही समझ गया इस संथाल-परगने के निर्जन कोने में
मैं हूँ असहनीय अतिरिक्त—यहाँ नहीं अंट सकूँगा।
उसी समय लौट आता पर एक काम बाकी रह गया था।
और दो एक दिनों में ही कमेलिया खिलेगी
उसे पठाकर तब छुट्टी लूँगा।
सारा दिन कंधे पर बंदूक रखकर घूमा करता हूँ
वन-बीहड़ में

और शाम के पहले हर रोज़ कर गमले में पानी देता हूं।
देखा करता हूं कल। कहां तक आगे बढ़ी है।
आज उसका समय हुआ है।
जो मेरी रसोई के लिए लकड़ी ले आया करती है
उस सयाल लड़की को बुलाया है।
सोचा है इसी के हाथ
गाल्पत्र के पात्र में रख कर भिजवा दूंगा।
तंबू के भीतर उगा-ऊगा एक जासूसी कहानी पढ़ रहा हूं।
बाहर से मीठ सुर में आवाज़ आई काहे बुलाया है बाबू।
निकल कर देखता हूं कमेलिया
सयाल लड़की के कान में झूल रही है
और काले काले गाल को आलोकित कर रही है।
उसने फिर पूछा काहे बलाया।
मैं बोला—इसी वास्ते।

फिर कलकत्ता लौट आया।

१८

मामूली लड़की

मैं अंतःपुर की लड़की हूँ —
तुम मुझे नहीं पहचानोगे ।
तुम्हारी आखिरी कहानी की पुस्तक मैंने पढ़ी है शरतबाबू*
बासी फूलों की माला । —
तुम्हारी नायिका एलोकेशी को मरण दशा प्राप्त हुई थी
पैंतीस वर्ष की उमर में ।
पच्चीस वर्ष की उमर के साथ उसकी तनातनी थी
देखती हूँ तुम महाशय व्यक्ति हो
जिता दिया है उसे ।

अपनी बात बताऊँ ।
उमर मेरी थोड़ी ही है ।
किसी एक के मन को स्पर्श किया था
मेरी इस कच्ची उमर की माया ने ।
यही जानकर मेरा शरीर पुलकित होता था —
मैं भूल ही गयी थी कि मैं एक मामूली लड़की हूँ ।
मेरी तरह ऐसी हजार हजार लड़कियाँ हैं
सारी उमर का मंत्र उनके यौवन में ।
दुहाई है
एक मामूली लड़की की कहानी लिखो
बड़ा दुख है उसे ।

*बंगाल के प्रसिद्ध औपन्यासिक स्वर्गीय शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ।

उसके भी स्वभाव की गहराई में
कहीं अगर कोई असाधारण बात छिपी हो,
किस प्रकार वह प्रमाणित करेगी उसे,
ऐसे कितने हैं जो उसे परख सकें।
उनकी आँखों में कच्ची उमर का जादू लगता है
सत्य की तलाश में उनका मन नहीं जाता
हम बिक जाती हैं मरीचिका के दामों।
बात क्या उठी, बताती हूँ।
मान लो उसका नाम नरेश है
उसने कहा था कि मेरी जैसी कोई उसकी आँखों नहीं पड़ी
इतनी बड़ी बात विश्वास करूँ, ऐसा साहस नहीं है
न करूँ, ऐसा जोर कहाँ है।
एक दिन वह गया विलायत को।
कभी-कभी चिट्ठी पत्री मिल भी जाती थी मुझे।
मन ही मन सोचती, राम राम इतनी लड़कियाँ हैं उस देश में,
इतनी उनकी ठेलमठेल भीड़।
और फिर क्या सभी असाधारण हैं
इतनी बुद्धि इतनी उज्ज्वलता।
और उन सबने ही क्या आविष्कार किया है एक नरेश सेन का
स्वदेश में जिसका परिचय दस जनों में दबा था।
पिछले मेल की चिट्ठी में उसने लिखा है लीजी के साथ समुद्र
में नहाने गया था।
बंगाली कवि की कविता की कई लाइनें उद्धृत कर दी हैं
वही जिसमें उर्वशी उठती है समुद्र से।
इसके बाद बालू पर बैठ गए
एक दूसरे के बगल में—
सामने हिल रही हैं नील समुद्र की तरंगें,

आश्चर्य म पड़ा हुआ है निमन्त्रण पत्र
कोनों म उसके चुप धीरे धीरे कहा
यदि तो उस दिन तुम आए
दो दिन बाद पके आमों
सीपी क दो पर्त
बीच मे भरा रत्न दो
एक ठोस अथ बिंदु से—
दुलभ मूल्यहीन।
बात कहने का कैसा असाधारण ढंग है।
उसी के साथ मरना न लिखा है
बात यदि यथार्थ हुई हो तो भी दोष क्या है
लेकिन है चमत्कार—
हारा नहीं सात का फूल क्या सत्य है?
तो भी क्या सत्य नहीं है?
समझ ही तो सकते हो
एक तुलना का इशारा
उसकी चिट्ठी म एक अन्य द कांटे की तरह
मेरे हृदय म चुभो कर रहता देता है—
मैं एक अत्यत मामूली लड़की हू।
मूल्यवान को पूरा मूल्य चुका दू
ऐसा धन तो मेरे हाथ म नहीं है।
अजी न हो यही सही
न हो मैं सारे जीवन ऋणी ही बनी रहो।
पैरों पड़ती हू एक कहानी तुम लिखो शरत बाबू
अत्यत मामूली लड़की की कहानी—
जिस अभागिनी को दूर से मुकाबला करना होता है
अन्तत पाँच-सात असामान्याओं के साथ—

अर्थात सप्तरथिनी को मार
समझ गई हू मेरा भाग्य खोटा है
हार हुई है मेरी ।

किन्तु तुम जिसकी कहानी लिखोगे,
उसे जिता देना मेरी ओर से
पढ़ते-पढते ऐसा हो कि छाती फूल उठ ।
फूल चदन पडे तुम्हारी कलम के मुह मे
उसे नाम देना मालती ।

वह नाम मेरा है ।
पकड जान का कोई डर नहीं है
एसी अनक मालतियाँ हैं इस बगाल मे
व सभी मामूली लडकियाँ हैं
व फ्रेंच जमन नहीं जानतीं
रोना जानती हैं ।

कसे जिता दोग ?
उच्च है तुम्हारा मन महीमसी है तुम्हारी लेखनी
खूब सभव तुम उसे त्याग के रास्ते ले जाओगे
दुख के चरम बिंदु पर
शकुतला की तरह ।
दया करो मेरे ऊपर ।
उतर आओ मेरे धरातल पर ।
बिछौने पर सोई हुई रात के अधकार म
देवता के निकट जो असभव वर मांगती हू—
वह वर मैं नहीं पाऊँगी

किन्तु ऐसा करना कि तुम्हारी मालती को वह मिले।
रहने दो ना मरने का साथ पथ सहने में
बार बार वह पग हो अपनी धरी ना में
रहने दो आदर के साथ उसे अपनी उपासिका मण्डली में।
इसी बीच मालती एम० ए० पास कर
कलकत्ता विश्वविद्यालय से
होने दो उसे गणित में प्रथम तुम्हारी कलम की एक खरोंच से।

किन्तु यहीं यदि रुकते हो
तो तुम्हारे साहित्य-सम्राट नाम को धब्बा लगेगा।
मेरी दशा जो भी हो
तुम अपनी कल्पना को छोटी मत बनाओ
तुम तो विधाता की भाँति कृपण नहीं हो।

लड़की को भेज दो यूरोप में।
वहाँ जो लोग ज्ञानी हैं
विद्वान हैं वीर हैं
जो कवि हैं जो शिल्पी हैं जो राजा हैं
वे दल बाँधकर उसके इर्द गिर्द इकट्ठे हों।

ज्योतिर्विद की भाँति वे आविष्कार करें उसे
सिर्फ विदुषी जानकर नहीं
नारी जानकर।

उसमें जो विश्वविजयी जादू है
वह रहस्य प्रकट होवे
मूढ़ों के देश में नहीं

उस देश म जहाँ समझदार हैं, ममज्ञ हैं
जहा अग्रज हैं फ्रेंच हैं जमन हैं ।
माल्ती के सम्मान के लिए क्यो न एक सभा बुलवाई जाय,—
बड बडे नामी गरामी लोगा की सभा ।
मान लिया जाय वहाँ मूसलाधार खुशामद
की वर्षा हो रही है,
और बीच मे से वह लापर्वाही के साथ चली है—
तरगा पर स चला करती है जिस प्रकार पालवाली नाव ।
उसको आँखें देखकर वे कानाफूसी कर रहे हैं
सभा कह रहे हैं, भारतवष का सजल मेघ
और उज्ज्वल धूप
दोनों ही मिले हुए हैं इसकी मोहिनी दृष्टि मे ।
यहाँ जनान्तिक म कह रखू,
सृष्टिकर्ता का प्रसाद सचमुच मेरी आँखा मे है ।
अपन ही मुह अपनी बात कहनी पडी लाचारी है
आज भी किसी यूरोपीय रसज्ञ का
साक्षात्कार भाग्य को नसीब नहीं हुआ ।)
नरन आकर खडा हो उसी कोने मे
और खडा हो उसकी असाधारण लडकिया का दल
और इसके बाद ?
इसके बाद 'बनिया की बटी रतनो
मोर कहनिया इतनो
मरा सपना खतम हुआ ।
हाय रे मामूली लड़की
हाय रे विधाता की शक्ति का अपव्यय !

१५

अफ्रीका

उस उद्भ्रान्त आदिम युग में
जिस समय स्रष्टा अपने प्रति असन्तोष से
नई सृष्टि को बार-बार विध्वस्त कर रहे थे
अधैर्य के कारण बार-बार सिर हिला रहे थे —
उसी दिन
रुद्र समुद्र की बाहु
प्राची धरित्री की छाती से
छीन ले गया तुम्हें ए अफ्रीका
बाँधा उसने तुम्हें वनस्पति के कठिन पहरे से
कृपण आलोक के अन्तःपुर में
वहाँ एकान्त चुपचाप फुरसत के समय
तुमने संग्रह किया था दुर्गम का रहस्य
पहचाना था जल स्थल और आकाश का दुर्बोध संकेत
प्रकृति का दृष्टि अतीत जादू
मंत्र जगा रहा था चेतनातीत मन में।
भीषण को तुम चिढ़ा रहे थे
विरूप के छद्मवेश में
शंका को हार मानना चाहते थे
अपने को उग्र करके विभीषिका की प्रचण्ड महिमा से
ताण्डव के दुन्दुभि निनाद से।

हाय छायावृता,
काले घूंघट के नीचे अपरिचित था तुम्हारा मानव रूप
उपेक्षा की आविल दृष्टि में ।
वे लोहे की हथकड़ी लेकर आये
जिनके नख तुम्हारे भेड़िया से भी अधिक तीक्ष्ण हैं
आया मनुष्य—पकड़ने वालों का दल
गर्व से जो अन्ध हैं तुम्हारे सूर्यहीन अरण्यों से भी अधिक।
सभ्य के बर्बर लोभ ने
नंगा कर दिया अपनी अमानुषिक निर्लज्जता को।
तुम्हारे भाषाहीन क्रन्दन में
बाष्पाकुल वनमार्ग में
पंकिल हो उठी धूलि तुम्हारे रक्त और आंसू से मिलकर
दस्यु-पदों के कांटे-जुड़े जूतों के नीचे
बीभत्स कीचड़ का पिण्ड
तुम्हारे अपमानित इतिहास में दीर्घकालीन चिह्न छोड़ गया।
समुद्र के पार उसी समय उनके मुहल्ले-मुहल्ले में
मंदिरों में पूजा का घंटा बज रहा था
सबेरे और संध्या समय
दयामय देवता के नाम पर
बच्चे खेल रहे थे माताओं की गोद में
कवि के संगीत में बज उठी थी
सुन्दर की आराधना।

आज जब पश्चिम दिगन्त में
प्रदोषकाल झंझावायु से रुद्ध श्वास हो रहा है
जब गुप्त गह्वरों से पशु निकल आये हैं
अशुभ ध्वनि से दिन का अंतकाल घोषित किया है

आओ ए युगान्त के कवि
आसन्न सन्ध्या की अन्तिम रश्मिपात के समय
खड़े हो जाओ उस हृत-मान
मानवी के द्वार पर।
बोलो क्षमा करो —
हिंस्र प्रलाप के भीतर
यही हो तुम्हारी सभ्यता की अंतिम पुण्य वाणी।

१६

आविर्भाव

बाट जोही थी किसी दिन भरे फागुन मे तुम्हारी,
पर पधारे चरण इस घनघोर वर्षा बीच
इस उत्ताल तुमल निनाद मद्रिल छद से
घन घनित मोहन घुमडते पद बध से
तुम गान जो चाहो बजाना आज मेरी प्राण वीणा पर, बजा लो खींच
इस घनघोर क्षण बीच

दूर से देखा किसी दिन था तुम्हारा कनक-अञ्चल आवरण
नव फूल चम्पक आभरण
पर पास देखा तो नवल
घन-नील अवगुठन विमल
चल चचला की कौंध म है दमकता, करता चपल विचरण !
कहाँ वह आज चम्पाभरण !

एक दिन देखा तुम्हारे चरण छिन छिन छू रहे वन तल
परस से सिहर उठते हैं कुसुम दल
और फिर एसा लगा है पड रहा माना कहीं सुन
क्षीण कटि की मेखला किंकिणी की-सी मदुल रुनझुन
लग रहा ऐसा कि पाया हो कहीं निःश्वास-परिमल
जब चरण सुकुमार छूते नवल वन-तल !

आएगा जब यह गुजर भर गगन म कम्प थिर घन
चरण म बाँध गुजन-दल
ढक लिया गया को तुम्हारो मदिर छाया म
सजल पात-शयन माया म
कि श्यामल कर दिया तुमन हृदय गागर किनारा
श्याम-सुन्दर महोत्सव चल
चरण म बाँध गमन दल ।

फल-वन म यह फागन म पिरोए हार मैंन मनोरम उपभोग्य
पर य है न यह उपहार जो होव तुम्हार योग्य
जिधर चरण बढ़ तुम्हार फिर उसी ही ओर
प्रिय यह अनसरण करता चला जाता स्तवन का गान आत्मविभोर !
क्षद्र यह वीणा बजा सकती कहाँ यह स्वर विशाल-मनोज्ञ
पर य हैं न यह उपहार जो होवे तुम्हार योग्य !

जनता था कौन यह छिन भर निहारो मूर्ति वपण को करगी दूर
चचल दरस फिर मिट जाएगा मन क्रूर !
और फिर यह जानता था कौन—लज्जा दीन
मैं यो प्रिय जनोचित साज सज्जा हीन
होऊगा मलिन मन छीन !
हाय सहाग घर के द्वार पर तुमन कराया इस तरह का ध्य विनिवदन
दिया इस रूप म दशन !

क्षमा कर दो क्षमा अपराध !
मेरा निरायोजन यह अभद्र प्रमाद !

क्षणिक पणकटीर म प्रिय तुम पधारो आप
झिलमिल दीप के आलोक मे चुपचाप,
बत की इस बासुरी मे झरे नयन प्रसाद
मन भावन ! क्षमा कर दो क्षमा, अपराध

बाट जोही जब तुम्हारी भरे फागुन मे तुम्हार तब चरण आए न
अब पधारो इस भरी बरसात म (सुखदेन)
तुम पधारो हे गगन प्रागण लुठित-अचल
सकल स्वप्न करो मुदित मन प्रद्रवित चचन

गान जो चाहो बजाना आज मेरी प्राण-वीणा पर, बजा लो खींच
इस घनघोर ववण बीच !

त्राण

इस अभागे देश से हे नाथ मंगलमय करो तुम
दूर सब भयजाल ओछे
छिन्न कर दो लोभ से नृप से मरण से
भीति का जंजाल
चूर्ण विचूर्ण कर दो यह पाषाण का जो भार
दुर्वह दीन कपारड़ चिरपतन व्यथा की मार
यह अवनति सदा की धूलितल में —
यह कठिन अपमान अपना ही निमेष निमेष
यह दासत्व की शृंखला भीतर और बाहर जड़ित
बारम्बार हो नतशीष अस्तोदयान्त नतपद प्रान्त
तल का यह सचिर परिहार मानव दर्प का
हत गर्व-मर्यादाजनित धिक्कार लज्जाराशि बृहदाकार
कर दो चूर्ण ठोकर मार
दो अवसर कि शुभ प्रत्यूष वेला में
उठाए सिर ग्रहण कर सकें निज निश्वास
मुक्त बयार में लग्न सबै यह निस्सीम
परम व्योम का आलोक दृप्त अशोक।

१८

इस बार मुझे लौटाओ

आज जब संसार में सब लोग अपने अपने कर्म में हैं
निरत आठों याम,
उसी समय तू छिन्न-बाधा गँवार शिशु की तरह
मैदान में बैठा उदासी से भरे तरु के तले छिपकर कि
दुपहरिया गँवाता,
दूर के वन गंधवाही तप्त झंझा के झकोरों में बजाता
बाँसुरी दिन भर
अरे उठ आज अपना सिर उठाकर देख आग लगी कहाँ है ?
कौन शंख बजा रहा है विश्व जन को जगाने के हेतु ?
यह आकाश फटता है कहाँ दुस्तर करुण क्रंदन गिरा से ?
किस अंधेर कैद कारा गृह,
में बंदी अनाथ बधू तुम्हारी मदद पाने के लिए
व्याकुल पुकार रही ?
कहीं से स्फीत वपु अपमान दीन-दरिद्र अक्षम को
गिरा कर चूस रहा निरंतर लाख मुँह फैला
कि उठ वह दर्प स्वार्थोद्धत कल्प अन्याय
का कैसा घृणित परिहास ग्रास किए चला नर-लोक को ?
सर्वचित भीत कौन दास छिपा हुआ है छद्म वेश !

देख, यह जो सिर झुकाए मूक मानव खड़ा—
जिसके म्लान मुख पर सदा अंकित शत शताब्दी

की दरिद्र निर्धनता की पीर
जितना भी न सांगो भार ढोता ही चला करता
अलस गति से जहाँ सब लोग चलते हैं
मरण के बाद जाता लाद है औलाद के सिर पर—
करम को ठोकता है पर न झल्लाता
न देता देवता को दोष रखता है न मन में
रंच भर अभिमान
सूखी रोटियाँ को चाट अधपटा बचाए
जा रहा है कष्ट रक्षित प्राण हाहाकार से जर्जर!
जब इस अन्न को भी छीन लेता है निठुर
कोई लगाता प्राण में ठोकर निठुर गर्वान्ध
अत्याचार तो फिर जानता यह भी नहीं
वह जाय किसके द्वार पर कुछ न्याय की
आशा लिए।
बस एक बार दरिद्र के भगवान को
है याद कर लेता है करुण निश्वास लेकर।

१९

'भर-सक-भला' और 'और-भी-भला'

भर-सक भला पुकार उठा—हे और भी भला भाई
किस स्वर्गीय जगत म तुमन निज आभा फलाई।
और भी भला रोकर बोला पूछो नहीं बसेरा
अकर्मण्य दम्भी की अधम ईर्ष्या म घर मेरा।

२०

उपकार का दम्भ

कहा शवाल न ऊच उठा सिर,
कि लिख लो ताल यह मत भूलना फिर—
दिया मैं न तुम्ह बिल्कुल सवर
शिशिर की एक बूदी पार मेरे।

२१

निज का और साधारण का

कहा चाँद ने निज प्रकाश मैं ने
जगती को लुटा दिया
जो कलंक मेरा उसको अपने मे
हो मैं है सटा लिया

२२

भक्ति के पात्र

रथ-यात्रा शोभा महा धूमधाम सब ओर।
पथ पर झुक झुक भक्तजन करत प्रणति अघोर॥
पथ रथ मूर्ति सभी यही सोचें मैं हूं देव
अंतर्यामी देवता हंसत लखकर भेव!

वदीवीर

पाच नदिया क किनार
दखत हा देखते गुरुमत्र के बल क सहार
जटा जूट सभाल सिर पर अग उठ सिख वार
निमम निडर निधडक धार
और हजार कठो स समुच्छित जयध्वनि गरु की
ध्वनित कपित मथित कर उठी सब दिगप्रात
नव जागरण उत्थित सिक्ख वीरो न निहारा
नवल अरुणोदय पुकारा
कि अलख निरजन'
यह महारव उठा बधन ताड भय भजन
खिची विशाल असिया वक्ष तट क पास
घन उल्लास स बज उठीं झन झन झन
सुनो पजाब आज दहाड उठा कि
'अलख निरजन ।

एक आया था कभी यह दिन
लाख प्राणा न न जाना भय न नका छिन
न रक्खा किसी का भी ऋन
कि जीवन मत्य चरणों क तल ये मत्य
आशका रहित थ चित्त
दुगम पाँच नदिया क दृढ़ तट पर

आया था कभी यह दिन
उधर किन्हीं का महल दिन उन बारम्बार
नाहनाह की घी भग हो भागी अलग सदा
अर यह कौन है ?
जिनके कि कर्म निनाद में आकाश मथित हो उन
रह रह रातिदिन निनोद की है शान्ति होता भग
र यह कौन है जिनके प्रदीप्त मशाल जलकर
जला दन है गगन का लाल भाल विशाल
उठता है स्पष्ट विकराल ।
पाँच नदियाँ के किनार
नवन तन की रक्त लहरी मगन हो उठठा कहीं र !
लक्ष य र वि शेष कर उड रहे दुदम प्राण
दल क दल विहग समान नीडामया
आज वीरों न लगाई रक्त की टीका
प्रदीप्त हुआ मनोहर भाल जननी का
दुरगम पाच नदियाँ के किनार ।

मगल सिख उन्मत्त रण म
गय आलिंगन मरण म
फर्सी गदन मन्त्र म न या विकट उल्लास मन म
या उड जसे कि खाकर चोट निमम बाज
जूझ हो फनोद्धत मात्र स (मन म)
भयकर समर म हो व्यस्त व अलमस्त से
सिखवार गरज उठ कि उस दिन—
वन दारण घोष से—
जय वाहि गरु कि जय भयोद्धत रोष से
जब दुग म गरुदासपुर के हो गया बन्दी

विकट बंदा
तुरानी सैन्य के कर में
उसे घन निगड बद्ध विशाल सिंह समान
कसकर बाँध लोहे की कठिन जंजीर से,
लाया गया दिल्ली नगर में
जब कि बंदी हो गया बंदा विकट गुरुदासपुर में

सामने निकली मुगल सेना उड़ाती मार्ग पर की धूल
ले बरछा फलक की नोक पर
खंडित सिक्खों के मुंड का जय शूल
पीछे सात सौ सिख वीर बंदा चल रहे अलमस्त
झन झन झन झनाती आ रही
बेड़ी चरण में व्यस्त।
नगर में मच गई
सड़कें खचाखच भर गई
खुलने गये हर्म्य गवाक्ष अंतपुर बिराहा
सुन्दरी जन के दहाड़ा भीमरव से
सिख वीरों मरण जय भूल
जय गुरु वाहि गुरु की जय
मुगल सिख साथ साथ उड़ा रहे हैं
आज दिल्ली नगर पथ की धूल।

माना मच गई हो होड़
देगा कौन पहले प्राण सनाय छोड़।
सौ सौ वीर कट कट कर मरे,

जब दिन भर बधिक जल्लाद के हाथों भयंकर वार
सहा कर जय जय वाहि गुरु की जय
चढ़ाया रूप उज्ज्वल सान सी
सिर का कलगी कुसुम
किया निछावर आखिर सात दिवसों में।

हुआ जब सात दिन का अत्यदान समाप्त
काजी ने दिया तब डाल धन्य वीर के उत्संग में
उसके सुकोमल पुत्र को।
बोला कि इसको मारना होगा तुम्हें
निज हाथ से चुपचाप।
कोमल गात कुंवर किशोर
शृंखलबद्ध कर निष्पाप
बंदा के कलेजे का नरम टुकड़ा दुलारा लाल।
वाणी हुई उसकी रुद्ध
धीरे खींचकर शिशु को लगाया वक्ष से कसकर
निमिष भर के लिए रख दिया माथे पर
पिता का अभयदाता दाहिना निज हाथ
केवल एक बार निहार उसको चूम ली रंगीन पगड़ी
और फिर कटि में बंधी दारुण कृपाण संभाल ली
फिर दस शिशु के दुधमुँहे मुँह ओर बोला कान में
जय वाहि गुरु की जय न बेटा
है नहीं कुछ भय

नवीन किशोर मुख पर अभय किरणें
जल उठी तत्काल

बोला लाल
'जय गुरु वाहि गुरु की जय, नहीं कुछ भय !'

लिया बाइ भुजा मे कस
लगाया गल बदा वीर ने
फिर दाहिने कर ले कराल कृपाण
भोंक दिया कलेजे मे
दुलार लाल क !

जय वाहि गुरु की जय पुकारा लाल न
फिर लोट धरती पर गया निष्प्राण
सारी सभा था निस्तब्ध वाक्य विहीन !

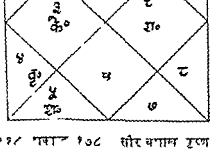
और फिर जल्लाद न जलती सडासी से जला डाला
अविचलित वीर बदा को
मरा सस्थिर न बोला एक कातर नाद
व्याकुल दर्शकों के नयन मुन्दित हुए
और सभा हुई निस्तब्ध ।

परिशिष्ट

रवीन्द्रनाथ की जन्मपत्री

स्व० कविवर रवीन्द्रनाथ की जन्मकुण्डली एक छोटी सी नोटबुक में मिली है। इस नोटबुक में उनके कुल के अन्यान्य व्यक्तियों की जन्मकुण्डलियाँ भी दी हुई हैं। कुण्डलियाँ बहुत संक्षिप्त हैं और उनमें मोटी मोटी बातें ही दी हुई हैं। रवीन्द्रनाथ का जन्मपत्र उक्त संग्रह के अनुसार निम्नलिखित होगा। इस प्रसंग में इतना और निवेदन कर देना उचित है कि कई अंगरेजी अखबारों में जो उनकी जन्मपत्री छपी है वह इस प्रामाणिक जन्मपत्री से कुछ भिन्न है।

जन्मकुण्डली



संवत १९१८ शकाब्द १७८ सौर वैशाख कृष्ण पक्ष सोमवार त्रयोदशी तिथि रेवती नक्षत्र मीन राशि और मीन लग्न में इनका जन्म हुआ। सूर्योदय से इष्टकाल ५३।००।००। अंगरेजी सन् से सन् १८६१ ई० ७ मई (आधी रात के बाद होने के कारण) मंगलवार २ बजकर ८ मिनट ७ सेकेंड पर प्रातःकाल जन्म हुआ।

मग्न म पुरन्मा का आग मगर्ग १८। ।११। • [या हुआ है। स्पष्ट हा यन अन्तारा न्मा है क्योंकि स्वा न रन न्मा न्मा क अनुसार नाम क अधार है। विग्नाग्ग मत ग यथ व । न्मा नागा । न्मा पर ग अनसार रहन म विग्नाग्ग मत ग व । व । न्मा ना आग मान तौर पर ११ वष मन्ता न्नि नाग । न्म प्रकार विग्नाग्ग न्मा वा चन न्म प्रकार नागा —

वध	ना न्मा ३ म	/ १ म	/ ना०	१/३ ना
केतु	नन	/ म	/	१/३०
शुक्र		/		१/
मय		१/		११०६
चन्द्रमा				१ १५
मगन		१ १६		१०२२
राहु		१		११८
बृहस्पति		१ ८		११२६

मन / ८१ न म उनका न्गान ना गया।

न्मम कर मनारजक याग का आर विनय न्म म ध्यान न्लिान क लिए यहा उनक जावन का न्ग न प्रधान घटनाआ का न्न्लग किया जा रहा है। चन्द्रमा का न्मा १ ५ म १ १५ न तक रहती है। यन वात उनक जावन म बन्त हा महत्त्वपूर्ण रन्ग है। न्मक विषय म विचार करन से पव कुछ और मन्त्वपूर्ण घटनाआ का चचा कर ला जाय।

विवाह— दिसम्बर १८८३ न —गत्र की महादशा म सूय की अनदशा। यन ध्यान दन याग्य बात यन है कि चन्द्रमा न्गनम्न होकर कन्द्र भाव का पण न्ष्टि स न्ग रन्ग है न्मलिए विवाह-योग वस्तुत गन का दशा म चन्द्रमा क अतर म पड़ना चाहिए अर्थात १८८४ न क माच महीन म शाह हाना चाहिए। परन्तु यहाँ तीन महीना पहल हा हा गया है। यन ध्यान रखना चाहिए कि दशा का गणना म मोटी तौर पर २४ घन्ट का १७ वष मानकर हिसाब किया गया है न्मलिए जन्मवार म अगर

एक मिनट का भी फेर हो तो करीब-करीब ४ मिनट का अन्तर पड़ सकता है। हमने हिसाब लगाकर देखा है कि रवीन्द्रनाथ की जन्मकुण्डली में सभी ग्रह कुछ देर में आते हैं। अतः जन्मकाल के निकालने में १० मिनट की गलती हुई है।

पत्नी-मृत्यु—नवम्बर १९०२—सूर्य की महादशा में शनि की अन्तर्दशा।

गीतांजलि की रचना—१९१० ई०—चन्द्रमा की महादशा में बृहस्पति की अन्तर्दशा।

द्वितीय यूरोप-यात्रा—२७ मई १९१२ ई०—चन्द्रमा की महादशा में बुध की अन्तर्दशा।

गीतांजलि का प्रथम प्रकाशन—नवम्बर १९१२ ई०—चन्द्रमा की महादशा में बुध की अन्तर्दशा।

नोबेल-पुरस्कार—१३ नवम्बर १९१३ ई०—चन्द्रमा की महादशा में शनि की अन्तर्दशा।

यहाँ विचारणीय और ध्यान देने योग्य बात यह है कि कवि की जन्मपत्री में चन्द्रमा, बृहस्पति और शुक्र बहुत ही उत्तम ग्रह हैं। बृहस्पति उच्च का होकर लग्नेश है और चन्द्रमा के साथ उसका विनिमय योग है। शुक्र और मंगल का भी ऐसा ही विनिमय योग है, पर वह उतना नहीं है। बृहस्पति त्रिकोण-स्थान में है। प्रथम योग बहुत ही महत्त्व का है। इस योग का फल निम्नलिखित बहुत ऊँचे दर्जे का कवि, विद्वान तथा कीर्तिमान होना है। मैं ज्योतिष के फलित भाग को अन्ध भाव से नहीं देखता और मानता, परन्तु यह योग ऐसा दीख पड़ता है कि यह मेरे जैसे संशयात्मा को भी आश्चर्यचकित करता है। मुझे मानना चाहिए कि यह योग पूरा होकर रहा है। एक और मार्के की बात है बुधादित्य योग। शुक्र इस योग को और भी महत्त्वपूर्ण बना देता है। धन-स्थान में बुध और सूर्य का योग बहुत फलप्रद बताया गया है। यह ध्यान देने की बात है कि 'गीतांजलि' की रचना का आरम्भ चन्द्रमा की दशा और बृहस्पति की अन्तर्दशा में हुआ है, उसका प्रकाशन

कन्या की दशा और बुध की अन्तर्दशा में हुआ है और उनका पुनर्जन्म पाना कन्या की दशा और शनि की अन्तर्दशा में हुआ है। ये दोनों ही योग अद्भुत भाव से घटे *।

मेष—बृहस्पति की दशा और उसी की अन्तर्दशा में पैदा हुए थे। ज्योतिषियों के लिए विचारणीय प्रश्न है। मेरी समझ में यह समय कर्म का उत्तम योग रहा था। रवीन्द्रनाथ ने अपनी कविताओं में मेष को बहुत ही उत्तम प्राप्तव्य बताया है। क्या पश्चिम ज्योतिष ने उनकी जिज्ञासा को स्वीकार कर लिया है? यहाँ भी यह ध्यान देने योग्य है कि शनि की महादशा १९४० के नवम्बर में समाप्त हुई। क्या गणना में भूल होने के कारण यहाँ दशा १९४१ तक चलती रही। *

---

*हिंदी के प्रसिद्ध कवि अब्दुर्रहीम खानखाना (रहीम) ने एक पुस्तक लिखी है खेट कौतुकम्। इसमें मौजी रहीम ने नाना प्रकार की भाषाओं की खिचड़ी में ज्योतिष के महत्वपूर्ण योगों की चर्चा की है। इन भाषाओं में अरबी है फारसी है संस्कृत है और हिन्दी है। एक योग बड़े आश्चर्यजनक ढंग से रवीन्द्रनाथ की जन्मपत्री में घटा है। रहीम कहते हैं कि यदि बृहस्पति (मुश्तरी) कर्क राशि में हो या धनु राशि में हो और शुक्र (चश्मखोरा) प्रथम (मेष) या दसवीं (मकर) राशि में हो तो ज्योतिषी को कुछ पत्र लिखने की जरूरत नहीं बालक निस्सन्देह बादशाह होगा। [रवीन्द्रनाथ की कुण्डली में बृहस्पति कर्क में है और शुक्र मेष राशि में।]—

यदा मुश्तरी कर्कटे वा कमान
यदा चश्मखोरा जमा वाऽस्मान।
तदा ज्योतिषी क्या पढ़ै क्या लिखेगा
हुआ बालका बादशाहा करेगा।

शुद्धि-पत्र

मुद्रण में अनेक अशुद्धियाँ रह गई हैं जिनके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। कृपया पाठक सुधार कर पढ़ें—

प्रकाशक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२	अग्निमन्त्र	आलिम्पन
१	६	गनकाण्ड्ट्यवना	गनकाण्डाट्च्यवना'
-		एक प्रकार	एक प्रकार का
१	६	अनिमवाना	अविमवार्गी
१	७	दूसग का	दूमरा का
८	८	कितना वश	नट्न वश
१०		विचार आचार	विचार आचार
१०	१	यथावद्धि	यथावृद्धि
१	३	गुरुत्वक स्थान	गुरुत्व का दान
८	१७	(आआ)	(आआ)।
१८	-१	जान थ	जान थ।
१८	२१	छाड रगा	छाड रगा
१८	२२	एक एक	एक
२१		गयहान	मगवान
२२	६	त्वामालस्य	त्वामाश्रित्य
२२	८	अम्य०	अम०
-२	८	०मति गाग०	०मिगार०
-	८	उग्च	उग्छ
-८		म अनुग	म अनुग

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	९	ग" तुण ग	ग" तुण ग"
९	०	गिरात	गिर्गि
९		गाग"ा	"ाा।।
३	९८	ज"ग्रा ग	प्रार
८		"ा ा"ा	"ा""मा
०	९	वनग विगा"ना	वाना विग"ना
	५	मणागान	यणयात
३	९	म"गजया	म"गाय
८		मन म अ ग	मन व अधर
८९		वना	"वना
८		वधाग"	"व धाग"
८	९	वनमान व	वनमान वा
४	०	"ायक ह हा	"ायक र "ी
८		जा भा न"ा	जा न"ा
८३	९८	मभार	मभार वा
८३	०	""मा	""म
८	३	जयतिलकवागावा	जयतिलक
५		नरवाधिवर्षी	नरवाधिवर्षी
५९		वी यत्रप ा	व यत्रप ा
५		अविच्छिन्न	अवच्छिन्न
६८	२५	मवि" आन	मवि" मान
५९		जौ" टूक	जा" "क
८		रगनाग	"ानाग
		दूर"	ह्"
९	९९	वावि	वालिका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	२६	मान्य	मौक्य
११	२५	प्रवहित	प्रवाहित
११	२७	भाग म	भाग व
१५	१	व साथ मिलावर	व साथ ताल मिलावर
१२	८	अजायन	अभाव्न
१	११	ज्याना र	ज्यना है
१६	५	वअगवना	वगवनी
१४२	१	तूफान और म	तूफान और राज्य म
१८७		तुम्हार प्रश्न	तुम्हार पास प्रश्न
१८७	१०	रनिमाग	रुनिमाग
१८९	०	ज्यना	उठगा
१		पगापग	पगापग
१९०	१०	विद्यमान है।	विद्यमान पाता है।
१९७	७	स्मनिया क	स्मनिया का
	११	भवान	भवन
१	१	भुवन	भुवन
१०	१८	असम्र	आम्र
१०	४	नीत्र छा	तात्र छा
११	१	वपफ	वणपू
११	१	न्रम	छू रमा
२१	१	और तथा पान	जूता और पान
१६	२	पुरस्थान	पुरस्थमन
५	५६	(Real)और(unreal)	Real और Unreal
७	१०	स्म है कि	है कि
७८	१५	मान ममानदाता	मान समानदाता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३८	१८	सद्वर्द्धि	सन्वद्धि
१३	३८	नीन्नाथ था न होता।	गग थाय था ना रग्गा
१८	३	गावधान	गावधान
१८६	८	उमना	उमन
८	१६	न्ग मनागा	न्न मनागन
२११	६	चाहिए	चाहिए।
२११	३	स्थचिन	स्थचिन
२११	१	जपन	अपनी
२१२	१५	विटरनाम्न	विष्टरनिज
१८	१	न्निरथ	दानरथ
२१	१	जनन्नि	अनून्नि
२२	१	रच	रम
२	२१	पन्धार	मन्धार
२४	१	आनन्द	अगन्द
८	१५	नूरानि	नूणार
२४	३	बम म	बम य
२३५	१०	एक आर अभिन्न	एक और अभिन्न
२७	१	एक आर अभय	एक और अभद्य
२७	१	एक रूप म	एक व रूप म उपन्ध करना
२७	१४	चित्तम न्सिा रहा ह	चित्त म दिख रहा है
२८	१८	एकाहूर्णो	एकावर्णो
३४	१५	वणन नजान निन्नार्थो न्धात	वणाननकान निन्नार्थं स्थानि

पष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४०	१६	विचत	विचति
२४०	१६	विश्वमायी	विश्वमाटी
२४०	१७	सभुनक्तु	सयुनक्तु
२४१	८	भविष्य का निरतर	भविष्य का
२४१	०	कला	क्ला
२४२	२	आ जाता है।	आ जाती है।
२४२	६	मानत है ?	मानत ह
२४२	२३	एकभेद	एकभेद
२४४	०	परमात्मा ज्याति	परमात्मा का ज्याति
२४४	२२	जिसम	जिसक
२४४	५	विट्ठवर	विट्ठल
४५	८	रमा	रक्षा
४५	८	कवल भाव म	कोमल भाव क
२४६	६	मनोद्घाटिनी	मर्मोद्घाटिना
२४७	१	ढचा	ढाँचा
२५	२६	उन्हान न	उन्हान
२५१	४	सन्देह	सन्देश
२५२	०	मैं कुतूहल	म कुतूहल
२५	२३	वक्षा का	वक्षा का
२५५	२	माड	झाड
२५५	८	बाद प्रयागार क	बाद सारा आश्रम प्रयागार क
२५५	६	सवा कर	सवा का
२५५	२१	स्नहपान	स्नह पाने
२५	५	रहता था।	रहता था—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	१	विस्मा	विस्मां
	११	आ त्रम था	आश्रम म
		मनाविप	मताया
	१	आग	आग
		गाग नार विगाग	गाग नार विगान
	२	म्यग था	म्यग था
	१	निमप म	निमप म
		उप म	उप म
	१	प्ता विपाप	प्ता विपाप
		अ नि म—	अपान नयना म—
	१८	नपागामप	नपागामप
		मप ना विा	मप ना विा
	१	विा विमप मगाप	पयागगा भयन म
			विा विमप सगाग
	६	मम्भाप	मप्पाप
६५		वा मापा	वा जयमापा
६		यना अपन	बना विा अपन
८	६	पपा	गपा
		म्मा	पप
६८		प्मगिा	प्मीगिा
७१	२	नपा	न दा
७१	७	अनविन यप	अनविन नम यह
७	८	प छ	पुछ
७८	१	नपाना	पपाना
७		वणायान	वणस्मान

पष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७७	८	वनमचव	वनमचन
७७	८	ग्गा	गहा
७७	११	उदयन	उद्धत
	१८	मचता मजाना ग्ती	मचना-मजानी-ग्ती
	९	अगाप मम्नी	अगाप—मम्नी
	५	ममन	ममन
८८	६	विप्लव	निद्ध
१३८	७	तर—मनाग्र	तर मनाहर
	६	ग्गन स नवगान का ।	ग्गन म नवग्गन का ।
८१	१	ग उग्ग	हा उग्गा
	८	म चर पग्गा	म चग पग्गा
८	१५	मप-कण	मप कण
२८	६	जयलक्ष्मा	जयग्दमा
१८८		अगन्नि	अगुग्गी
१८	१४	गटगग	वट गर्ग
१८	५	जग्गाया	जग्गाया
७	१	गवग्गा वमरा	गव दा-वमरा
		यग्गा जनान्तिक म	(यहा जनान्तिक म—
		कहानिया	कगनियाँ
०		की	क
०२	१	य	यग
	१८	जनना	जानना
१०२	१	अध्य विनिवग्न	अध्य विनिवग्न
०५	१	म बठा	म बगा
३०	१६	ग्ता ग	ग्ता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
०	१	मग्ध	मग्र
१	७१	मात्र	नग
१०	५	गर भि जय	गर बा जय
११	१	नगर म मन ग	गम्भर नगर म मघ ग
११	१५	अन्त पुर विरागा	अन्त पुर विगारा
२११	१७	मिग्न	मिश्र
